मान्यवरांनी केलेला गौरव

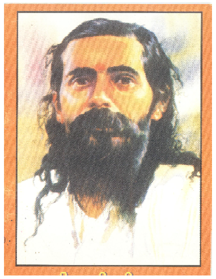

* प्रज्ञाचक्षु श्रीगुलाबरावमहाराज का समन्वय विचार सारे जगत का बंधुभाव जागृत करणे में समर्थ है ।

...परम **पूजनीय गुरुजी गोळवलकर.**

(एप्रिल १९७३)

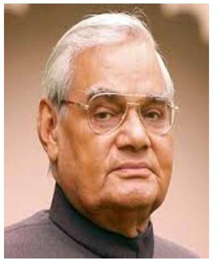

* श्रीमहाराजजीने इतना सखोल तथा सटीक ज्ञान प्रकट किया है की - गागर में सागर भर दिया है.

...**भारताचे पंतप्रधान श्रीअटलबिहारी.**

(दि.२४.९.१९९६)

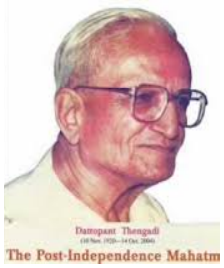

* महाराज का सर्व धर्म समन्वयविचार देखकर उनको **समन्वयमहर्षि** कहनाहि उचित है ।

-मा.दत्तोपंत ठेंगडी

भारतीय मजदूर संघके संस्थापक. (लेख. दि.१९८१)

* श्रीगुलाबरावमहाराज की विज्ञान दृष्टी ऐसा कहना उचित नही ।
महाराजकी विज्ञानको प्रदान की हुई अध्यात्मदृष्टि, - ऐसा कहना चाहिए ।

डॉ.विजय भटकर.

- **पद्मश्री,पदमभूषण** संगणक वैज्ञानिक

(महाराजकी विज्ञानदृष्टी- प्रस्तावना)

* श्रीगुलाबरांव महाराज के सारे ग्रंथ सभी भाषामें अनुवादित होकर विश्वके सामने आने चाहिए ।
महाराज का वैचारिक योगदान उन विषयके तज्ञ व्यक्तींयोंके सामने प्रस्तुत हो,
ऐसा प्रयत्न आप करें, यहीं सदिच्छा !

-पंतप्रधान श्री मोरारजी देसाई.

(दि.२०/९/१९७८)

* श्रीगुलाबरावमहाराज कोनसेभी
विशेषणमें न बैठनेवाले,
विश्वनें कभीभी न देखें हुए, ऐसे
अद्भुतं रोमहर्षणं व्यक्तिविशेष है ।
वह सारे जगत को वंदनीय होंगे !
और विश्वगुरु होंगे, यह निश्चित है !!!

-पू.स्वामी गोविंद देव गिरी

(श्रीकिशोरजीव्यास)

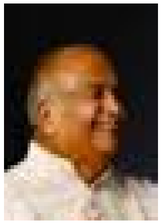

* विदर्भ में एक छोटेसे
माधानग्राम में रहनेवाले,
शिक्षण संस्कार से दूर, चर्मचक्षु से विहीन
एक किशोर बालक,
जागतिक किर्तीके डार्विन-स्पेन्सर जैसे
बडे शास्त्रज्ञकों और तत्वज्ञोंकों
आव्हान देता है,

उनके विचारोंको गलत सिद्ध करता है,
उनका अकाटच तर्कसे खंडन करता है,
यह कितना बडा आश्चर्य !

-प्रा. श्री रामभाऊ शेवाळकर

(विदर्भके मान्यवर साहित्यिक)

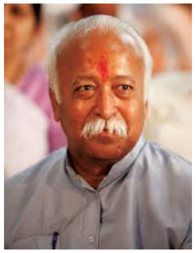

* महाराज नें केवल ३४ वर्ष के आयु में
सिर पर किताबोंकी पेटी लेकर,
ग्रामग्राम पैदल चलकर,
जो कष्ट समाजको जागृत करने कें लिए किए,
वह अपूर्व है ।
यह उनका कष्टरूप कर्मयोग है ।
साथमें भक्तियोग भी है ।
देशहितार्थ कार्य करणेवाले प्रत्येक व्यक्ति ने,
महाराज के विचारसागर से,
स्वयंको उचित उपदेश स्विकार करके
समाजका प्रबोधन करना चाहिए ।
भारत के अनमोल विचारवैभव का दर्शन महाराज के द्वारा देखने को मिलता है ।
कठोर कर्मयोग तथा उत्कट भक्तीयोगका समुच्चित आदर्श समाज के सामने रखा यह असाधारण उदाहरण है ।

-सरसंघचालक श्रीमोहनजी भागवत

(दि.६/७/२०१५)

ऐसे अनेक महानुभावोंने परमस्तुति किये हुए
विश्व-इतिहास कें एकमेव महापुरुष !
- श्रीगुलाबराव महाराज !
हम है सामान्य सेवक !
सामान्य वहाणधर !
भगवान के विग्रह को सुशोभित करनेवाले !
शोभा . . . अति सुंदर !
ऐसे शब्द सुननेके लिऐ आतुर !
श्रीमहाराजका विचारवैभव विश्वके सामने आये,
और
महाराजके विचारधनसे समाज सत्वसंपन्न हो,
इतनीहि मनीषा !

समन्वयमहर्षि श्री गुलाबरावमहाराज दिग्दर्शित

वैश्विक हिंदु संस्कृति

हिंदी आवृत्ती

प्रकाशक :
श्रीज्ञानेश्वर मधुराद्वैत सांप्रदायिक मंडळ,
दहिसात, अमरावती विदर्भ.

✍
डॉ. कृ.मा.घटाटे

संपर्क :
श्रीरंग घटाटे, गोकुळ बंगला, सीव्हिल लाईन नागपूर.
फोन नं. ०७१२२५३३९९७, मो. नं. ९३७२५२९७७०

प्रसाद-भेट

हिंदुत्व की भीषण पराजय

ईसा १८३४ मे **लार्ड मैकाले** भारत के शिक्षा-प्रमुख बने। उन्होंने पारंपरिक संस्कृत पाठशालाओं के अनुदान बंद किए और नए अंग्रेजी स्कूलों में संस्कृत अध्यनको, आंतरिक कुटिल नीति रखते हुएँ प्रोत्साहित किया। पिता को पत्र में उन्होंने लिखा है कि,

''मैंने बनायी पद्धति से यहाँ शिक्षाक्रम चलता रहा, तो आगामी ३० वर्षो में बंगाल में एक भी हिंदू नही बचेगा- सारे ख्रिस्ती बन जायेंगे। या फिर केवल पॉलिसी के लिए नाममात्र हिंदु(पॉलिटिकल हिंदु) बने रहेंगे. धर्मपर या वेदों पर उनकी श्रद्धा कतिपय नही रहेंगी।''

''स्पष्ट रूप से हिंदुधर्म में हस्तक्षेप न करते हुए और बाह्यतः उनकी धार्मिक स्वतंत्रता को कायम रखते हुए, हमारा उद्दिष्ट पूरा सफल होगा.'' (१२-१०-१८३६)

पं. नेहरू द्वारा भारतीय संविधान में बोए हुए **'सेक्युलरिझम्'** के और हमारे '**धर्मश्रद्धाहीन हिंदुत्व**' के बीज, मैकाले के इस पत्र में स्पष्ट रूपसे दृग्गोचर होते है।

इस प्रकार, ईसाईयों ने योजनापूर्वक भारतीय शिक्षापद्धति को आमूलाग्र बदल डाला। सैन्यबल से विजित भारत पर उन्होंने शैक्षणिक क्षेत्र में भी अतुलनीय विजय पायी। दु:ख की बात यही हैं की शिक्षा के माध्यम से विजित भारतवर्ष आज भी बौद्धिक शृंखलाओं से मुक्त नहीं हुआ।

मैक्समूलर के शब्द है -

"India has been cor ce,
but india must be conc in and
the second conqu be
a conquest by e

*

अंग्रेजों ने मेकाले और मॅक्समूलर के इस भविष्य को भीषण सत्य में बदल डाला.

स्व. परम पूजनीय श्रीगुरुजी गोळवलकर
द्वितीय सर संघचालकजीको
तथा
स्व. पिताश्री बाबासाहाब घटाटे
नागपुर संघचालकजीको
समर्पण

समन्वयविचारसे वैश्विक सामंजस्य

''समाज के भिन्न भिन्न घटकों को परस्पर संघर्ष से बचाने के लिये प्रज्ञाचक्षू गुलाबराव महाराजजीने ''समन्वय विचार'' प्रतिपादित किया.

देश के सामाजिक बंधुभाव को महाराजने दिया हुआ ''तात्त्विक अधिष्ठान'' याने सर्वधर्मसमन्वय विचार!

इसके परिणाम दूरगामी रहेंगे. श्री गुलाबराव महाराजजीने विवेचन किया कि मुस्लिम, ख्रिस्ती, पारसी, आदि सब धर्मों के प्रमुख तत्त्व प्राचीन वैदिक संस्कृति में सुचारु रूपसे पाये जाते है, जो कि उन धर्मो से कही अधिक प्राचीन है.

इस दिशा में यदि ठीक प्रबोधन हो, तों न केवल भारतीय अपितु सम्पूर्ण विश्व के सभी धर्मो में सामंजस्य और बंधुभाव निर्माण होगा.''

- पू. गुरुजी गोलवलकर

काल चक्र

काल	**भारत में**	**विदेश में**
सृष्टि-उत्पत्ति से आरंभ	वेदकाल **प्रकाशयुग**	वेदकाल **प्रकाशयुग**
कलिवर्ष २५०० तक	पौराणिक काल **प्रकाशयुग**	संस्कारलोप से आर्य परंपरा का लोप **अंधःकारयुग**
कलिवर्ष २५०० के बाद	बाह्य जगत् को ज्ञानविज्ञान का अध्यापन प्रकाशयुग के **अस्तका आरंभ**	भारतसे पुनः शास्त्राध्यनका आरंभ **धूसर युग**
कलिवर्ष ४००० के बाद	परकीय आक्रमण से विज्ञानपरंपराएँ खंडित किंतु वेद और अध्यात्म शेष **धूसर युग**	विज्ञानवाद के प्रभाव से भौतिकता की वृद्धि. **विज्ञानयुग**
कलिवर्ष ४९०० से आरंभ (इ. स. १८००)	अंग्रजों से भारतीय परंपरा की विकृति तथा भौतिकता की वृद्धि **विज्ञानयुग का आरंभ**	भारत से संस्कृत तथा अध्यात्म-योगादि **शिक्षा का आरंभ**
कलिवर्ष ५००० के बाद	अध्यात्म से भोगवाद **पतन**	भोगवाद से अध्यात्म **उन्नति**

युगाचार्य को वंदन

प्रज्ञाचक्षु श्रीगुलाबरावमहाराज का जीवनकाल १९ वे शतक के आखिर और २० वे शतक के आरंभ में था । परतंत्रता और पाश्चात्य भोगवाद का प्रभाव सारे हिंदूस्तानपर छा गया था । प्राचीन भारतीय विविध ज्ञानपरंपराएँ , विविध संप्रदायों की परंपराएँ आदि के संबंध में भारतीय समाजमानस संभ्रमित हो गया था । उस ब्रिटिश काल के अंध:कारयुग में सारे ज्ञानक्षेत्रों में महाराजजीने प्राचीन आर्य परंपराओं की सचाई सामने लानेके लिए स्वयं नया मौलिक योगदान दिया । पाश्चात्य विचारधाराओं का कठोर तार्किक रीति से खंडण किया और भारतीयों के जीन्स में छिपे हुए ज्ञानविज्ञान के वैभव को संजीवनी की गुठी चखाई ।

“प्रत्येक कलियुग में धर्मविचार की पुनर्स्थापना करने के लिए मैं जन्म लेता हूँ” ऐसा महाराज स्वयं लिखते है । उसी उपलक्ष्य में विश्वके सारे धर्म वैदिक धर्म की शाखाए है ऐसा सप्रमाण सिद्ध्र करके सर्वधर्मसमन्वय की रीति सीखाई । और तत्त्वज्ञानक्षेत्र में शांकर अद्वैत को भक्ति से अलंकृत करके ‘अनध्यस्तविवर्त’ का नया आयाम देकर भक्तिशास्त्र की रचना की।

अंग्रेज राज्यकर्ता और ईसाईयों ने मिलकर ‘डिव्हइड एंड रूल’ इस कुटिल नीति से संपूर्ण भारतीय समाज के सांस्कृतिक ऐक्य को नष्ट-भ्रष्ट किया । भारत के सारे इतिहासको अत्यंत विकृत रीति से लिखकर विद्यापीठीय शिक्षा में पेश किया ।

उसका परिणाम आर्य-अनार्य , आर्य-शूद्र , ब्राह्मण-ब्राह्मणेतर , आदिवासी-आक्रमक , उत्तर-दक्षिण; ऐसे अनेक झूठे विवादों से एकात्म भारतीय समाज में परस्पर द्वेष की ज्वालाएँ उभरने लगी । इसी संदर्भ में महाराजजी ने ईसाईयों निर्मित विकृति से बचने के लिये “इतिहास कैसा लिखा जाय? इतिहास कौंन लिखे? कौनसे इतिहास पर विश्वास रखे?” आदि प्रश्नों पर विस्तारसे चर्चा करके मार्गदर्शन किया । और मानवों को संस्कारसंपन्न बनाने के लिए “स्वोत्कर्ष बोधक इतिहास” के लेखन , अध्ययन और अध्यापन की भारतीय परंपरा को फिरसे नये ढंगसे निरूपित किया है । इस पुस्तिका में-

* पहले श्रीमहाराजजी के इतिहासलेखन विषयक मार्गदर्शक तत्त्व संक्षेप में है ।
* बाद में पाश्चात्य विद्वानों द्वारा की गयी भारतीय संस्कृति की प्रशंसा है ।
* आखिर में महाराजजी के वैश्विक संस्कृति सिद्धान्त के अनुसार
वेद , महाभारत , पुराण , स्मृतियों में वर्णित आर्य संस्कृति के वैश्विक संदर्भों का और अवशेषों का संक्षेप में संकलन है ।

इसप्रकार संकलित किया हुआ “स्वोत्कर्ष बोधक इतिहास” पढने से सामान्य वाचक को भी अपने ज्ञानविज्ञानसंपन्न सामर्थ्यशाली पूर्वजों के लिए आदर बढेगा और न्यूनगंड (इन्फ्यूरिटी कॉंप्लेक्स) पूरी तरह से नष्ट होगा यही अपेक्षासे इस छोटीसी पुस्तिका का प्रकाशन हमने किया है ।

धर्मश्री , पुणे — श्रीज्ञानेश्वर पदाश्रित

चैत्र शुद्ध्र प्रतिपदा , कलिवर्ष २१०२ — -किशोर व्यास

‘स्वोत्कर्षबोधक इतिहास’

परस्पर-विरोधी पक्ष
एक दूसरे के इतिहास का अपलाप करते हैं
इसलिए
दिव्यदृष्टि से युक्त सत्पुरुषों द्वारा लिखित
इतिहास पर ही विश्वास करें !
यदि,
दिव्य दृष्टि को नहीं मानते, तो
‘स्वोत्कर्षबोधक इतिहास’
को मानना चाहिए !

*** श्रीगुलाबरावमहाराज ***

(साधुबोध, प्रश्न ८०३)

आमुख

'विश्वव्यापिनी हिंदूसंस्कृति' का द्वितीय संस्करण प्रकाशित होने जा रहा है। इससे पुस्तक का महत्व, उपयोगिता और सर्वप्रियता का परिचय तो मिलता ही है, परंतु साथ ही प्रस्तुतकर्ता की परिश्रमशीलता और बहुपठन की जानकारी भी मिलती है।

पुस्तक समन्वयमहर्षि श्री गुलाबराव महाराज जी के चिंतनदर्शन पर आधारित है। और प्रस्तुतकर्ता इसके प्रति समर्पित है।

भारत के प्राचीन काल के गौरवशाली इतिहास का लेखन विश्वगुरू भारत के द्वारा ही हुआ है।

प्रथम मानव के प्रादुर्भाव से लेकर, सभी जातियों, सभी धर्मों, ज्ञानविज्ञान के सभी शास्त्रों का उदय भारत की इसी पवित्र भूमि में हुआ और यह देश मानवीय जीवन के सर्व पक्षों के दृष्टि से लगभग पचीस हजार वर्षो तक विश्व के प्रथम गुरू के स्थान पर विराजमान रहा।

प्रस्तुत पुस्तक इस गुरुत्व की झलक का दर्शन कराती है।

विश्वव्यापिनी संस्कृति के अतिरिक्त पुस्तक का प्रतिपाद्य विषय इतिहास है। गत सौ-डेढसौ वर्षों में अपने देश भारत का जो इतिहास लिखा गया है, वह न तो भारतीय अवधारणा के अनुसार है और न ही भारतीय कालगणना के कालक्रम पर आधारित है।

भारतीय चिंतन परंपरा के अनुसार पुस्तक में -

" इतिहास की भारतीय अवधारणा, तत्त्वदर्शन, परिभाषा, महत्व, उद्देश्य, लेखन, लेखन शैली, वैज्ञानिकता"

आदि सभी संबधित विषयों का विस्तार पूर्वक प्रतिपादन किया गया है।

इस कारण इतिहास के अभ्यासकों के लिए यह पुस्तक एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि पुस्तक का यह द्वितीय संस्करण देश के प्रबुद्धवर्ग और विशेषतः इतिहासकारों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा और मार्ग दर्शन का कार्य करेगा।

- रामसिंह

राष्ट्रीय अध्यक्ष

अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना

चैत्र कृ. ११ युगाब्द ५००१ / ईसाई मार्च ३१, सन २०००

'विश्वव्यापिनी हिंदू संस्कृति'

१

भारतीय इतिहास दृष्टि

भूमिका ३
अंधे और हाथी ४
आर्य-संकल्पना ५
सर्वत्र ऋषियोंके स्थान ६
हिंदुओंकी इतिहासदृष्टि ८
'आयविट्नेस' का प्रामाण्य? १०
ऐतिहासिक विकासवाद ११
इतिहास किसके द्वारा लिखा जाए? १२
स्व-उत्कर्ष-बोधक इतिहास १४
पुराणादि तात्त्विक इतिहास १५
(व्यक्तिनिष्ठ-पारमेश्वरीय-तात्त्विक)
इतिहास की सीमाएँ १९
'आर्य' शब्द का अर्थ २०
दास आर्य बनेंगे २१
काले आर्य २१
आर्य अत्याचारी नही थे २२
आर्य/दास/दस्यु:गुणवाचक २४
अनार्य का लक्षण २४

२

युरोपीय विद्वानों के गौरवोद्गार

(१) प्राचीन भारत में इतिहास का लेखन २५
(२) कालप्रभावसे परिवर्तन २७
(३) भारत : समूची पृथ्वीका मानचित्र २८
(४) प्रथम मानव भारत में २९
(५) सभी मानवीय संस्कृतियोंका उद्गम भारत में २९
(६) सभी ज्ञानशाखाओं का भी आदि स्थान भारत २९
(७) ऋग्वेद का काल २९
(८) भारत का अखंड ऋण ३०
(९) वेदों का अध्ययन करे ३०
(१०) स्त्रियों की ज्ञानलालसा ३०
(११) प्राचीनतम राष्ट्र ३०
(१२) भारत की सीखें ३१
(१३) विशालग्रंथसंपदा काव्यरूपमें शास्त्रग्रंथभी काव्य में ३२
(१४)८००० साल पहिले बाक्ट्रिया में हिन्दू राजा ३२
(१५) राज्यकलह की कारण मीमांसा ३३
(१६) उत्कृष्ट शासन ३३
(१७) प्राचीन हिन्दूस्तान में उत्तम राज्य पद्धति ३४
(१८) भारत-युरोपकी तुलना ३५
(१९) लोकतंत्र - संघ : प्राचीन भारत ३५
(२०) व्यक्ति स्वतंत्रता ३६
(२१) लोकसत्ताक के बीज ३६
(२२) स्वयंपूर्ण नगरव्यवस्था ३६
(२३) ग्रामराज्य एकसूत्रमें ३७
(२४) यूरोप में मनुस्मृति ३८
(२५) अति विकसित समाज के नियम : भारत में ३८
(२६) राजाओं के लिए भी निष्ठुरता ३९
(२७) मनुस्मृति का आदर ३९

सांख्य दर्शन

(२८) सांख्यकी सूक्ष्म दृष्टि ३९
(२९) उत्क्रांतिवाद : सांख्यका अनुवाद मात्र ४०

उपनिषद्

(३०) यूरोप का ज्ञान अधूरा ४०
(३१) शांकरभाष्यकी महत्ता ४०
(३२) भारतीय बुद्धि की स्तुति ४०
(३३) उपनिषदों की महत्ता ४१
(३४) कंहा ग्रीक, कंहा आर्य ४१
(३५) समानता का कारण ४१

आयुर्वेद

(३६) आरोग्यरक्षक मनु ४२
(३७) सूक्ष्म विस्तृत विवेचन ४२

(३८) आयुर्वेद-उत्कर्षका कारण ४२
(३९) शस्त्रक्रिया ४३
(४०) नाक की प्लास्टिक सर्जरी ४३
(४१)प्लास्टिकसर्जरी का मूल ४४
(४२) शरीरका सूक्ष्म ज्ञान ४४
(४३) वैद्यक के असंख्य ग्रंथ ४४
(४४) आयुर्वेद का परदेशगमन और पुनरागमन ४५
(४५) स्वयं का गुरुत्व भारत भूल गया ४५
(४६) शिष्य ही गुरूको पढाता ४५
(४७) मानस व्यथित होता है ४६

लिपि और गणित

(४८) लिपि और दशांश पद्धतियाँ भारत से ४६
(४९) गणितसे विश्व उपकृत ४७
(५०) शून्य की खोज ४७
(५१) बीज गणित ४७
(५२) ५००० वर्ष पूर्व ज्योतिर्वेध ४७
(५३) त्रिकोण - भूमिति ४८
(५४) बीजगणित का मनोरंजक इतिहास ४८
(५५) बीजगणित भारतीय/ग्रीक ४९
(५६) वैदिक गणित ४९

व्याकरण

(५७) व्यंजनों और स्वरों का भेद ४९
(५८) यूरोप२५००साल पीछे ५०
(५९) पाणिनी निर्मित भव्य प्रासाद मंदिर ५०
(६०) प्रयत्न और कल्पना शक्ति की चरम सीमा ५०
(६१) आर्यों का अधिक्षेप करनेका साहस नहीं ५१
(६२) कोशग्रंथ ५१
(६३) रामायण और ग्रीक महाकाव्यों की तुलना ५१
(६४) महाभारत की महत्ता ५३
(६५) विश्व कल्याणकारी महाभारत ५४
(६६) व्यासजी और होमर ५५
(६७) प्लेटोसे महर्षि व्यासजी की महत्ता ५५
(६८) सभी ज्ञान शाखाओं में संपन्नता ५६
(६९) अध्ययन के लिये आयु बहुत कम पडेगी ५६
(७०) हिन्दू हार माननेवाले नहीं ५६
(७१) मानवबुद्धि की पूर्णता ५७
(७२) सूरज और जुगनू ५७
(७३) जगद्‌गुरु भारत ५७
(७४) समानता का कारण ५८

३

ब्रिटिशों का षड्यंत्र : इतिहास-विकृति

बोडन ट्रस्ट, षडयंत्री मैकाले, चतुर मैक्समूलर

(१) बोडन ट्रस्ट, इंग्लैड ६०
(२) मैकाले की योजना ६०
(३) मैक्समूलर का कार्य ६१
(४) मैक्स. का आंतरिक हेतू ६२
(५) वेदों को उखाड फेंको ६२
(६) बायबल सर्वश्रेष्ठ और वेद निकृष्टतम ६२
(७) प्राचीन धर्म का पतन ६३
(८) ईसाई बनो ६३
(९) स्वामी दयानंदजीपर छींटे ६४
(१०) ईसाई धर्म प्रसार के लिये वेदों का भाषांतर ६४
(११) सायणाचार्यजी पर दोषारोपण ६४
(१२) ब्रिटिशोंकी शिक्षाप्रणाली ६५
(१३) भारतीयोंको प्रलोभन ६५
(१४) ईसाईयों का विजय ६६

आर्यो का गमनागमन

पाश्चात्य मतवाद पूर्वपक्ष ६८
देशभक्तों का उत्तरपक्ष ६९
श्रीमहाराजका सिद्धान्तपक्ष ६९
भाषाशास्त्र के अनुसार ६९
कपालशास्त्र के अनुसार ७०
मॅक्समूलर गलती स्वीकार ७०
डॉ. आंबेडकरजी का मंतव्य ७१
जर्मनी मॅक्स. को भूल गया ७३
आर्यसंस्कृति की विश्वव्यापिता ७४
गोरी चमडीका अभिमान ७४
यवन-म्लेच्छोंकी आर्यमूलता ७६
(महाभारत का प्रामाण्य)
म्लेच्छ शब्द का व्याकरण ७७
वैदिक धर्मकी प्राचीनता ७८
२००० सालों के बाद...? ८२

४

आर्यसंस्कृति का जागतिक अस्तित्व

वैश्विक संदर्भ

(१) इस्लामपूर्व इतिहास ८६
(२) पांच प्रस्थ ८६
(३) महादेव की स्तुति ८७
(४) लबी-बीन-अख्तब्-बिन्-तुरफा ८७
(५) इस्लामपूर्व अरबस्थानः अरेबिकलिपीमें भागवत ८७

वैदिकसंस्कृति के यूरपीय संदर्भ

(६) ईसापूर्व यूरोप तथा ''येशू का हिंदूत्व'' ८८
(७) ग्रीस ९०
(८) रोम ९०
(९) इटली ९१
(१०) जर्मनी ९१
(११) स्कॅंडेनिव्हिया ९२
(१२) इंग्लैड ९२
पुनर्जन्म / ३ देवता शाप-दान ९३
''हर हर महादेव'' ९३
बौद्ध अवशेष ९३
चंद्र वंशीय परंपरा ९३
(१३) पॅलेस्टाईन ९४
(१४) एशिया मायनर ९४
(१५) राजा बलि (बोल/बेल) ९४
(१६) इरान / पर्शिया ९५
(१७) एल्-एर्-(रा)न=इरान ९५
(१८) तुर्किस्तान ९६
(१९) इजिप्त- इथिओपिया ९६
(२०) नृकपालसे वांशिक शोध ९७
(२१) अफ्रिका ९८
(२२) सायबेरिया ९८
(२३) यूरोप शब्द का प्राचीन रूप संस्कृत में ९९
(२४) एशिया / यूरोप के उत्तरीय देश ९९

अमेरिका

(२५) अमेरिका ९९
(२६) हिन्दू संस्कार १००
(२७) सत्यप्रियता / सदाचार और कठोर शिक्षा १००
(२८) माया / इंका संस्कृतियाँ १०१
(२९) रामकी विजययात्रा १०१
(३०) ऋषियोंका विश्वसंचार १०२
(३१) पेरूदेश : द. अमेरिका १०२
(३२) वेश्या विरहित देश १०३
(३३) ''राम सित्वा'' : राम सीता विवाह १०३
(३४) मेक्सिको १०४
(३५) मेक्सिको में राज्याभिषेक १०५
(३६) मेक्सिको में महाभारत १०५
(३७) माया संस्कृति हिन्दूत्व से चिन्हित १०६

दक्षिण-पूर्व देश

(३८) ऑस्ट्रेलिया १०७
(३९) जावा सुमात्रा १०७
(४०) बोनियों द्वीप १०७
(४१) बाली द्वीप १०७
(४२) चीन १०७
(४३) जापान : समान प्रथाएँ १०८

०००

१
भारतीय इतिहास दृष्टि
भूमिका

प्राचीन काल में पूरे विश्व में एक ही विश्वव्यापिनी संस्कृति विद्यमान थी- वह थी वैदिक आर्य संस्कृति! परंतु काल के प्रचंड संहारकारी प्रवाह में नित्य परिवर्तन होता रहता हैं. सुसंस्कृत समाज असंस्कृत बन जाता है तो असंस्कृत समाज सुसंस्कार सम्पन्न बनता हैं. नगर के स्थान पर जंगल बन जाते हैं तों जंगल के स्थान पर नगर बस जाते है. यह कालचक्र अक्षुण्ण गति से चल रहा हैं.

आज उत्खनन में प्राचीन संस्कृति के अवशेष सभी स्थानों पर पाये जा रहे हैं. प्राचीन वैदिक संस्कृति से उनका निकट संबंध है. यही नहीं, किंतु अन्वेषकों को यह भी मान्य करना पड रहा हैं कि वे अवशेष वैदिक संस्कृति के ही हैं. परंतु हम भारतीय लोग आज न्यूनभावना से इस सीमातक ग्रस्त हैं, कि उस अन्वेषणों को स्वीकार करने में भी हमें संकोच होता हैं.

इसाई मिशनरी तथा ब्रिटिश शासकों ने हमारे भारतीय पूर्वजों के इतिहास को विकृत रूप में प्रस्तुत किया. फलस्वरूप, मैक्समूलर की कल्पना में उपजी 'आर्यवंश' यह संज्ञा हमने स्वीकार की. इसके फलस्वरूप प्राथमिक शालाओं से लेकर एम. ए. की कक्षातक यह कल्पित और झूठा सिद्धांत पढाया जाने लगा, कि,

''आर्यवंशीय लोग आक्रामक के रूप में भारत में आये, यहाँ के आदिवासियों का उन्होंने क्रूरता से संहार किया, और 'शूद्र' संज्ञा देकर उन्हें गुलाम बना डाला.''

आज समाज में फूट डालनेवाले आर्य-अनार्य, उत्तर-दक्षिण, आर्य-

द्रविड, आदि भयानक भेदवाद इसी गलत धारणा तथा शिक्षा के परिणाम हैं. इन धारणाओं से उद्‌भूत अनर्थ से बचने तथा उसकी तीव्रता कम करने हेतु आज सत्य इतिहास का अध्ययन कर, नीर-क्षीर विवेक से काम लेना आवश्यक हो चुका हैं.

वस्तुतः, सभी को मान्य हैं कि, विश्वभर में पाये गये प्राचीन अवशेष वैदिक संस्कृति से ही घनिष्ठ संबंध रखते हैं. परंतु अलग अलग व्यक्तिगत भावनाओं एवं गृहीत सिद्धांतों के प्रभाव में आकर भिन्न-भिन्न व्यक्तियों ने भिन्न भिन्न निष्कर्ष प्रतिपादन किए.

१. पूर्व पक्ष

विश्वभर में पाये गये प्राचीन अवशेषों का वैदिक संस्कृति से ही घनिष्ठ संबंध देखकर यूरोपिय पण्डितों ने यूरोप के कुछ प्रदेशों को आर्यों का मूल स्थान माना, तो रशियन पण्डितो ने कास्पियन समुद्र के निकट-प्रदेश को! मैक्समूलर ने आर्यों की मूल भूमि मध्य एशिया को कहा, तों लोकमान्य तिलकजी ने उत्तर-ध्रुवीय प्रदेश को! ज्यों ज्यों प्राचीन आर्य संस्कृति के अवशेष मिलते गये, उसी क्रमसे आर्यों के भारत आने के भिन्न भिन्न मार्गो की कल्पनाएं की जाने लगी.

२. उत्तर पक्ष

इसी की प्रतिक्रिया के रूप में भारताभिमानी विद्वान व्यक्तियों ने, विश्वभर में पाये गये वहीं प्राचीन अवशेषों से, अभ्यासपूर्ण प्रतिपादन किया कि - भारत ही प्राचीन आर्यों की मूल भूमि थी, वे यहाँ से ही बाहरी जगत में फैले.

३. सिद्धान्त पक्ष

परंतु स्पष्ट हैं कि ये दोनों निर्णय अधूरे हैं, अभिनिवेश से भरे है. इन दोनों मतों की अपेक्षा, वास्तविकता के निकट यहीं पक्ष है कि - आर्यों

की संस्कृति आरंभसे ही विश्वव्यापिनी थी. उसे ''भारत के बाहर जाने, या बाहर से भारत आने'' की आवश्यकताही नहीं थी. प्रज्ञाचक्षु श्रीगुलाबराव महाराज ने यहीं सिद्धान्त विस्तारसे प्रतिपादित किया.

अंधे और हाथी

यहाँ एक कहानी याद आती हैं. -

अंधों के एक समूह को एक हाथी मिला. एक अंधेने सूंड को टटोला और कहा कि हाथी साँप के समान होता हैं. पाँव टटोलनेवाला बोला की वह खंभेके समान रहता है. कान को हाथ लगाने वाले नें हाथी को सूप के समान बतलाया और इस प्रकार वे सारे झगडने लगे. अंत में जब किसी ने आकर समझाया कि तीनों का कहना अंशतः समीचीन होते हुए भी, अपूर्ण है. सूंड, पांव, कान, पेट ये सब उस हाथी के अवयव अवश्य हैं परंतु समूचा हाथी तो इन सब के एकत्रित विचार करनेपरही समझ में आयेगा.

आर्य संकल्पना : ५ तथ्य

इसी प्रकार, वेदों में जों भूप्रदेश या आकाश के नक्षत्रों के उल्लेख है उस आधार से यह कहना कि, ''आर्य यूरोप में थे / उत्तर-ध्रुव पर थे / कास्पियन सागर के प्रदेश में थे / एशियामायनर में थे / या भारत में थे / यह सारा इतिहास का अनुमान बिलकुल ठीक ही है.

परंतु उसी समय अन्य प्रदेशों में आर्य नहीं थे, और उपर्युक्त प्रदेशों से वे अन्य प्रदेशों में गए, यह कहना भी गलत होगा.

''पूरे जगत् में जब आर्य संस्कृति ही फैली थी,
उसी समय भारत में भी वह विद्यमान थी.''

यह आर्यसंस्कृति की विश्वव्यापकता का सशक्त सिद्धांत प्रज्ञाचक्षु समन्वयमहर्षि श्रीगुलाबराव महाराजजी ने प्रतिपादित किया है.

बडी विचित्र बात है - चर्मचक्षुसंपन्न पंडितोंने किसी एकही पहलू

पर नजर डाली, परंतु इस अंध विभूति ने विश्वव्यापक संस्कृति का ऐतिहासिक सत्य अपने प्रज्ञाचक्षुओं से प्रमाणित कर दिखाया.

इस सिद्धांत को पुष्टि देनेवाले उत्खनन तथा अन्य प्रमाण दिन प्रतिदिन नए नए उपलब्ध होते ही जा रहे हैं. इस सिद्धान्त के अनुसार पांच महत्वपूर्ण बातें प्रमाणित होती हैं.

१) **'आर्य' = सुसंस्कृत मानव**
२) **'आर्य' याने कोई 'वंश-विशेष' नहीं.**
३) **शूद्रवर्ण भी आर्यों का ही एक भेद.**
४) **आर्य लोग न बाहर से भारत आये, न भारत से बाहर गये.**
५) **३००० वर्ष पूर्व आर्यों की वैदिक संस्कृति सारे विश्व की संस्कृति थी.**

डॉ. आंबेडकरजी का प्रतिपादन

डॉ. आंबेडकरजी ने भी इनमे से तीन बातें ''शूद्र पहले कौन थे?'' यह अपनी पुस्तक में सुचारु रूप से प्रतिपादित की हैं. वे कहते है कि,

''आर्य शब्द का, वंशवाचक अर्थ में वेदोंमें कहींभी प्रयोग नहीं है. और शूद्रवर्ण भी पहले क्षत्रियही थे, बाद में उन्हे शूद्रत्व दिया गया. आर्य शब्द संस्कृति वाचक है - वंशवाचक कदापि नही. आर्यसंज्ञा को वंशवाचक अर्थ देनेवाले यूरोपीय पंडित और यहां के अंग्रेजोंसे नाता जोडने की इच्छा रखनेवाले कुछ लोग है, किंतु यह पूर्णरूपेण गलत धारणा जानबूझकर फैलाई गयी हैं.'' * * *

सर्वत्र ऋषियों के स्थान

प्राचीन काल में वैदिक ऋषियों ने अपनी प्रतिज्ञा **''कृण्वन्तो विश्वमार्यम्''** अच्छे ढंग से पूर्ण की थी. ये वैदिक ऋषि पूरे विश्व में सभी

स्थानों में जन्म लिए हुए थे, न कि केवल भारत में !

कश्यप ऋषि कास्पियन समुद्र के किनारे थें,

वसिष्ठ असम में थें.

अगस्त्य दक्षिण भारत में थे.

शुक्राचार्य बलिराजा के शासन में मिस्रदेश (इजिप्त) में थे.

मयासुर का वास्तव्य माया संस्कृति अमेरिका में था.

परंतु संस्कारों के लोप के साथ यहां वहां की आर्य संस्कृति धीरे धीरे लुप्त होती गयी और आज केवल भारत में बच पायी है. उसका भी धीरे धीरे ऱ्हासही होता जा रहा है. त्यागप्रधान आर्य संस्कृति से, हम भोगोन्मुख आसुरी संस्कृति की ओर झुकते जा रहे है.

इस प्रवृत्ति पर नियंत्रण रखने के लिए, सभी सत्प्रवृत्त संगठनों, संस्थाओं तथा अभ्यासू व्यक्तियों के सामूहिक प्रयास की जरूरत है. आज आवश्यकता है वैदिक ऋषियों की प्रतिज्ञा **''कृण्वन्तो विश्वमार्यम्''** के अनुसार सारे विश्व को सन्नीति तथा सदाचारसंपन्नता, सत्त्वगुणसंपन्नता की शिक्षा दे. याने भोग से त्याग की ओर, स्वहित से परहित की ओर, तमोगुण रजोगुण से सत्वसंपन्नता की ओर चलने की शिक्षा दे.

किसी भी समाजके लिए एक बडा अभिशाप है परतंत्रता! दुर्भाग्यवश भारतवर्ष एक हजार वर्षो से भी अधिक काल परतंत्र रहा. मुस्लिम आक्रमण के कारण राजकीय हानि के साथ मानसिक अधोगति भी हुई, हिंदुओं का क्षात्रतेज कम होते चला. परंतु उसके बादमें अंग्रेजी शासन में तों भारतीय समाज की उदार दृष्टि का भी अतीरेक हो गया और भारतीय लोग अपनी अस्मिता से ही हाथ धो बैठे.

हिंदुओं के मन में यह न्यूनता छा गयी कि दर्शन-विज्ञान-काव्य-कला-क्रीडा आदि सभी क्षेत्रों में हम यूरोपीयों की बराबरी नहीं कर सकते.

वे विजेता हैं, हम पराजित है. भारतीय मनःपटल पर से प्राचीन महत्ता के संस्कारो को पोंछ डालने हेतु ईसाई मिशनरियों ने पाश्चात्य शिक्षणप्रणाली का हथियार प्रयुक्त किया. उससे यही सिखाया गया कि हिंदुओं के प्राचीन इतिहास संस्कृति तथा धर्म की अपेक्षा यूरोपीय भौतिक विज्ञानवाद ही श्रेयस्कर है.

इस धारणासे मुक्त होने हेतु सर्वप्रथम इतिहासविषयक भारतीय दृष्टिकोण, प्राचीन संस्कृति की महत्ता और भारतीयोंके जगद्गुरुत्व का कारण समझ लेना अत्यावश्यक है. हमे अपने पूर्वजों की केवल स्तुति नही गानी हैं, उनसे स्फूर्ति भी लेनी है. और सारी दुनिया से अधिक विकसित किंतु सुसंस्कार-संपन्न तथा सामर्थ्यशाली राष्ट्र को पुनरुज्जीवित करना है. कश्मीर से कन्याकुमारी तक, पूर्वांचल से सोमनाथ तक विचरनेवाली भारतीय संस्कृति की विविध छटाओं से उस एकात्म भारत का मानचित्र शोभायमान हो उठे, इसी हेतु से इस विश्वव्यापी संस्कृति का अवलोकन करना अनिवार्य हो गया है. इसके लिए प्रथम प्राचीन आर्यों की इतिहास-विषयक दृष्टि को समझना पडेगा. यह विषय इतना सूक्ष्म और विशाल है कि सामूहिक प्रयास के बिना अपना ईप्सित सिद्ध नहीं हो पायेगा. यह प्रयास उसी दिशा में एक कदम है.

हिन्दूओं की इतिहास दृष्टि

समन्वय महर्षि श्रीगुलाबराव महाराज इतिहास को पाश्चात्य दृष्टि से नहीं, अपितु आर्य दृष्टि से देखते है. पश्चिमी विद्वान् सोचते है, कि इतिहास में घटी हुई प्रत्येक घटना विस्तार से समाविष्ट हो. ऐतिहासिक व्यक्तियों के प्रत्येक बुरे-भले कृत्य का निर्देश इतिहास में हो. परंतु इस प्रकार का अध्ययन उन्हीं के लिये संभव है जिनका इतिहास केवल दो-तीन हजार

वर्षों का हो. परन्तु जिस राष्ट्र का इतिहास सहस्रों वर्षो का हो, उसके लिए यह कैसे संभव है?

अपरंच, यूरोप में घटित युद्ध या अत्याचारों की क्रूर कहानियाँ, राजा-रानियों के व्यभिचारी वर्तन का वर्णन, भाई या पिताके प्राण लेकर सत्ता तथा सिंहासन हाथियानेवाले यवनो की जानकारी आदि से फायदा ही क्या है? जो ऐतिहासिक है परंतु नैतिक नहीं!

श्रीगुलाबराव महाराजजी **'शिक्षण'** की परिभाषा करते है, **''शिक्षा याने सु-संस्कारों का दान.''** और संस्कार का अर्थ हैं **दोषापनयन** और **गुणाधान**! भारतीय संस्कृति ने इतिहास को शिक्षामें समाविष्ट किया है.

अनैतिक इतिहास का समुचा ज्ञान प्राप्त करके सुसंस्कारों का वर्धन कैसे होगा? मान लीजिए माता के द्वारा युवा अवस्था में कोई गलती हो भी गयी, तो उसका समूचा ज्ञान पाकर पुत्र कौनसे सुसंस्कार पायेगा? अपितु ऐसी घटनाओं को भूल जाना ही व्यक्तिगत, पारिवारिक तथा सामाजिक दृष्टि से हितकर है. यही कारण है कि आर्यो द्वारा लिखित इतिहास (रामायण-महाभारत) या पुराणों में धर्माचरण की विजय तथा अधर्माचरण का विनाश ही, महत्व देकर लिखा गया है. आर्यो के इतिहास लेखन का एक सूत्र है -

अधर्मेण एधते तावत् ततो भद्राणि पश्यति ।
सपत्नान् जयति, समूलं च विनश्यति ।।

इतिहास को पंचम वेद के रूप मे मान्यता प्राप्त होने का कारण यही है कि उसके अध्ययन से सु-संस्कार मिलते है, समाज को स्थिरता मिलती है. आखिर में मनःशान्ति प्रदान करके वह आध्यात्मिक उत्कर्ष की ओर- जो भारतीय संस्कृति का परमो ध्येय है- प्रेरित करता है.

'आय विटनेस्' का प्रामाण्य

यदि केवल सत्य घटनाओं के अंकन को ही इतिहास मान ले, तो इस प्रकार से भी सत्य इतिहास लिखना संभवनीय नहीं है. न्यायालय में हम देखते है कि एकाध प्रसंग को 'आय विटनेस' देनेवाले चार अलग व्यक्ति चार अलग अलग प्रकार के बयान देते है. कारण यही है, कि उस घटना को देखने वालों की मनोभूमिका ही पृथक् पृथक् होती है.

इसीलिए, हर एक के बयान में व्यक्तिसापेक्षता होने के कारण इतिहास लेखनमें सत्य तथा असत्य का मिश्रण रहता है. यही कारण हैं कि एकही युद्ध का, मित्र-राष्ट्रों तथा शत्रु राष्ट्रो द्वारा लिखित इतिहास एकदम परस्पर विरोधी होते है.

ऐसी अवस्था में नितांत सा इतिहास कहाँ मिलेगा? परंतु महाराजजी ने कहा है,

''शत्रुओं द्वारा की हुई स्तुति तथा मित्रों द्वारा की हुई निन्दा सत्य स्थिति दर्शाती है.'' (साधुबोध प्र.८०५, पृ.३३३)

यही कारण है कि आर्य संस्कृति में इतिहासलेखन का काम निःस्पृह सर्वज्ञों को सौपा गया है. व्यासादि लिखित महाभारत पुराणही हिंदुओ के लिए विश्वास-स्थान है, जिनमें विश्व-व्यापक आर्य संस्कृति का सहस्रों वर्षो का इतिहास है, जो रंजक भी है, उद्बोधक भी ! उसमें सैंकडों राजाओं का नामनिर्देश मात्र है, परन्तु उनके समूचे इतिहास को यवनो, द्वारा किये गये आक्रमक विनाश से बचाना भारतीयों के लिए असंभव हुआ. यदि नालंदा, तक्षशिला आदि विद्यापीठो में वह इतिहास बच भी जाता, तो भी उनका सारा का सारा ब्योरा बचना मुश्किल ही था. अस्तु.

हमारी संस्कृति में, केवल निस्पृह, गुणसम्पन्न महानुभावो के ही चरित्र का अध्ययन अभीष्ट था, ईश्वर के अवतारों के ही चरित्र का गुणगान

था, और उसीके द्वारा, अंततः धर्म तथा ज्ञान का संदेश मिलता था.

महाराजजी कहते है, कि इतिहास का ध्येय इस प्रकार मानवजाति का उत्कर्ष करना था. महाराजजी के ''साधुबोध'' (आर्य तथा इतिहासविषयक प्रश्नोत्तर), ''समयोपदेश'' तथा ''संप्रदायसुरतरु'' के कतिपय प्रकारणों मे इसकी विस्तृत चर्चा पायी जाती है. इतिहास के प्रति उनकी दृष्टि इनसे विशद होती है.

इतिहास कैसे और किसके द्वारा लिखा जाये?

इतिहास का प्रयोजन क्या हो?

इन अनेक बातों पर उन्होंने सुस्पष्ट तथा निर्भीक मत प्रदर्शित किये है. दो सिद्धान्तों पर उन्होंने विशेष बल दिया है -

(१) स्वोत्कर्षबोधक इतिहास

(२) आर्य संस्कृति की विश्वव्यापिता.

प्राचीन आर्यो का इतिहासविषयक दृष्टिकोण और आधुनिक इतिहास-लेखन की पद्धति का अब हम इन्हीं दो सिद्धान्तों के अनुसार, परामर्श करेंगे.

ऐतिहासिक विकासवाद

महाराजजी ऐतिहासिक विकासवाद कदापि नहीं मानते. उनके मतानुसार, पाश्चात्यों के उत्क्रांतिवाद के प्रभाव से हम इस ओर झुके हैं. उत्क्रांतिवाद कहता है कि हर पुरानी बात अविकसित है. फिर तो पुराने स्नेहसंबंध भी अनुपयोगी बन जायेंगे! किसी निरोगी व्यक्ति को कोई बीमारी हो जाये, तो निरोगी स्थिति अविकसित, और रोगी अवस्था विकसित मानी जायेगी. इसीलिए वे कहते हैं कि,

''शाश्वत तथ्यों के संदर्भ में प्राचीन इतिहासही हितकर है, हाँ, नित्य परिवर्तनशील विषयों के संदर्भ मे नूतनता का अभिनिवेश कुछ सीमा तक ठीक है.

फिर उत्क्रान्तिवाद के अनुसार सभी घटनाएं विसदृश ही होनी चाहिए, अन्यथा, दो समान घटनाओं का ऐतिहासिक कालनिर्णय उत्क्रांतिवाद के परिप्रेक्ष्य में असंभव ही रहेगा.''

परंतु विश्व का प्रवाह तो कुछ सदृश घटकों से ही चलता है. जबतक सर्वथा वैसा दृश्य नहीं माना जाये, तबतक किसी भी घटना का आरंभ और विकास दृष्टिगोचर नहीं होगा. (उत्क्रांतिवाद के समीक्षा में इसका अधिक सूक्ष्म विवेचन है) इतिहास में महत्वपूर्ण मान्यता है इतिहास की पुनरावृत्ति (हिस्ट्री रिपीट्स् इट्सेल्फ) जो विकासवाद से नितांत विरोधी है. यदि विकासवाद सही हैं, तों पूर्वसदृश प्रसंग कभी भविष्य में घटित अलग अलग शब्द नही हो सकता.''

इस प्रकार, महाराजजी ने प्रमाणित किया है कि ऐतिहासिक विकासवाद एक गलत संकल्पना है.

इतिहास किसके द्वारा लिखा जाये ?

यह एक सर्वविदित तथ्य हैं, कि राग-द्वेष के कारण ऐतिहासिक संदर्भ से निकले हुए निष्कर्ष परस्पर भिन्न हो सकते है. ऐसी स्थिति मे इसके द्वारा लिखित इतिहास पर विश्वास कैसा किया जाये? इस संदर्भ मे महाराजजी कहते हैं.

''केवल महात्माओं द्वारा लिखित इतिहासही विश्वसनीय है. व्यक्तिगत राग-द्वेषों से ऐतिहासिक तथ्य बदल जाते हैं. अतएव रागद्वेषों-रहित साधुपुरुषों द्वारा लिखित इतिहास ही सच्चा एवं प्रामाणिक होगा. उसी से बोध लिया जाय.''

कोई कहते हैं कि ''निंदकों ने लिखा हुआ इतिहास प्रशंसकों द्वारा लिखित इतिहास से अधिक अच्छा रहता है.''

परन्तु महाराजजी इस मतको नहीं मानते. वे कहते हैं, ''यह मत तभी सत्य सिद्ध होगा, जिस दिन गणितीय सिद्धांतों के समान यह भी

प्रमाणित होगा कि दुनिया में केवल प्रेम मात्र है, द्वेष है ही नहीं, या गलतियाँ केवल प्रेम ही के कारण हो सकती हैं, द्वेष में गलती को स्थान ही नहीं.''

परंतु साथ ही उन्होंने यह भी प्रतिपादित किया है कि ''शत्रु के मुख से स्तुति और मित्रों द्वारा निंदा निश्चित ही सत्य स्थिति की प्रदर्शक है.''

''इतिहास महात्माओं ने ही लिखना चाहिए'' इस आर्यमत की पुष्टि में महाराजजी कहते हैं कि आर्य धर्म के अनुसार -

१- वचन,

२- आचरण,

३- आचारवान् व्यक्ति.

यह त्रिपुटी अनादि है इसके अनुसार धार्मिक क्रम इस प्रकार है-

१- श्रुति वचनप्रमाण है,

२- स्मृतियाँ आचरणप्रमाण है,

३- पुराणों मे धर्माचरण करनेवालो की कथाएँ है.

यदि इतिहास सर्वज्ञों द्वारा प्रणीत न हो, तो इसका निर्णय कौंन और कैसें करें? - कर्ण के द्वारा माता की आज्ञा का उल्लंघन धर्म है या अधर्म? महाराज कहते हैं -

''आजकल के इतिहास मे तिथिनिर्देश भी विश्वसनीय रूप से नहीं मिलता, फिर उससे धर्म का लाभ क्या होगा? अतएव सर्वज्ञप्रणीत रामायण-महाभारत ही हमारे लिए इतिहास है और यहीं कारण हैं कि केवल सत्पुरुषों द्वारा लिखित इतिहास ही हमें प्रमाण हैं.''

इस संदर्भ में आधुनिक इतिहास-लेखन उल्लेखनीय है. आज हम महत्वपूर्ण घटनाओं को टेलिविजन से देख सकते है, रेडियो द्वारा ताजी वार्ताएँ सुन सकते हैं, फिर भी कई बार समाचारपत्रों की वार्ताओं में

परस्पर विरोध भी पाया जाता है. अपना स्वार्थ सिद्ध करने तथा विपक्ष को हानि पहुँचाने के लिए ही आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति का उपयोग हो रहा हैं. निरिच्छता तो लुप्त-सी ही है. यही कारण है कि मानव की वैज्ञानिक प्रगति होने के बावजूद जानबूझकर दुसरों के सत्य इतिहास को छुपाया जाता हैं और विकृतीकरण भी होता रहता है.

अतः महाराजजी के मतानुसार, किसी ऐरे गैरे द्वारा लिखित इतिहास कदापि विश्वसनीय नहीं हो सकता, क्योंकि दो विरोधी पक्ष एक दूसरों के उज्वल कृत्यों को दबाकर, जानबूझकर गलत इतिहास अंकित करते है.

स्वोत्कर्ष-बोधक इतिहास

इस विवेचन से तीन बातोंपर प्रकाश पडता है -

१)परस्पर-विरोधी पक्ष एक-दूसरे के इतिहास को छिपाते है, तथा उसी को विकृत रूप में पेश करते है.

२) दिव्यदृष्टि से युक्त सत्पुरुषों द्वारा लिखित इतिहास पर ही विश्वास करें.

३) यदि दिव्य दृष्टि को नहीं मानते, तो ''स्वोत्कर्षबोधक'' इतिहास को मानना चाहिए. (साधुबोध, प्र. ८०३, पृ. ३३२) मेकाले, मैक्समूलर, मैकडोनेल, व्हिलर, ग्रिफिथ, मार्शल आदि द्वारा लिखित इतिहासों से तथा वर्तमान समाचार-पत्रों से महाराजजी का यह मत अच्छी तरह सिद्ध होता है. परंतु मित्र द्वारा निंदा या शत्रु के मुख से स्तुति तो अकाट्य ही है, इसीलिए यह मानने मे कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि उनके इतिहास में जो आर्यो की तारीफ है वह सत्य होगी. महाराजजी के मतानुसार इतिहास में सच्चाई पाना दुष्कर है. प्रत्यक्ष लेखप्रमाण पर थोडाबहुत विश्वास कर भी लिया, तो भी उससे कोई अनुमान निकालना प्रायः गलतही सिद्ध होता है.'' (साधु८०४,३३२)

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि इतिहास अप्रमाण है. इतिहास की सामान्य सत्ता कोई अमान्य नहीं करेगा, जो प्रमाण के लिए अवश्यंभावी है. परन्तु विकारात्मक लेखन के संदर्भ में, दिव्य दृष्टि के बिना इतिहास को समझना असंभव हैं. परन्तु दिव्य दृष्टि का मुखौटा ओढकर कोई इतिहास लिखे, तों उसका निर्णय करते समय स्वयं दिव्य दृष्टि पाना, या उसके अभाव में द्रष्टा पुरुषोंको ढूंढकर उनके द्वारा उसकी सत्यासत्यता को परखना आवश्यक है. यदि यह असंभव हो, तो दूसरे की दिव्य दृष्टि पर निर्भर रहकर, उस इतिहास का सत्य मानना सर्वथा अनुचित है.

- परंतु इतिहास यदि स्वोत्कर्षबोधक या स्वधर्मपोषक हो, तो उसको निश्चित रूप से सत्य माना जाये, चाहे वह किसी के भी द्वारा लिखा गया हो. विकाररहित या अनिच्छित इतिहास में भी बिना संकोच के विश्वास किया जाये. इसी दृष्टि से यूरोपीय विद्वानो ने भारतीय प्राचीन संस्कृति की जो खुले आम विशेष रूपसे स्तुति की है उसे समझना बोधप्रद होगा.

*

श्रीगुलाबरावमहाराज की दृष्टि में पुराणादि तात्त्विक इतिहास

एक जगह इतिहास के नियम बताते हुए श्रीगुलाबरावमहाराजजीने सप्रमाण प्रदर्शित किया है कि ''इतिहासलेखन के सर्वसामान्य नियम पुराणादि तात्त्विक इतिहासों पर लागू नहीं होते''. उन्होंने भारतीय इतिहासलेखन पद्धति को तीन प्रकारों में विभाजित किया है.

केवल व्यक्तिनिष्ठ इतिहास, महापुरुषों का पारमेश्वरीय इतिहास, और तात्त्विक इतिहास.

(१) केवल व्यक्तिनिष्ठ इतिहास - राजतरंगिणी, विजयविलास, रासमाला, बखरी आदि के समान.

(२) महापुरुषों का पारमेश्वरीय इतिहास - रामायण, महाभारत, हरिवंश, पुराण, बुद्धचरितृ, महावीरचरितृ आदि महापुरुषों द्वारा लिखित तत्त्वबोधक और सत्वगुणवर्धक शिक्षा देनेवाला इतिहास.

इसमें महापुरुषों की और राजाओं की वंशपरंपरा का कथाओं के माध्यम से विस्तार लिखा हुआ रहता है. इसके अध्ययनसे पूर्वजों का इतिहास ज्ञात होता है. इतनाही नहीं तों मनपर सुसंस्कार होते हुए शिक्षा भी मिलती है. इसमें धर्म की मर्यादा रहने के कारण यह पारमेश्वरीय इतिहास है.

''शिक्षा'' की व्याख्या समझाते हुए श्री गुलाबरावमहाराज कहते है ''**सुसंस्कारों का दान याने शिक्षण**'' सुसंस्कार का अर्थ है - **दोषापनयन और गुणाधान**. दोषों को दूर करना और गुणों को स्थापित करना !

इस लक्षण के अनुसार समाज के सारे वर्गो को सुसंस्कारसंपन्न करने के लिये - उनकी सत्ववृद्धि करने के लिये - सारे ऐतिहासिक तथ्यों की तथा प्रसंगों की रचना कथारूप याने मनोरंजक रीतिसे की जाती हैं. उसके अध्ययनसे पूर्वजों के लिये आदर बुद्धि वृद्धिंगतृ होती है तथा शिक्षा भी मिलती है.

(३) तात्विक इतिहास - वेदपुराणों में निसर्ग के वृक्ष और पशुपक्षियों की कथा भी आती है. जैसे ''वायु- शाल्मलीवृक्ष के कलह की कथा'' इनका भी उपयोग शिक्षा देने में ही है. उनको महाराजजीने ''**तात्विक इतिहास**'' कहा है. और तात्त्विक इतिहास के अध्ययन के निकष भी अलग बताए हैं. (साधुबोध प्रश्न ७८३ से ७९४ तक)

''सत्य इतिहास कौनसा समझना चाहिये? और किस इतिहास पर विश्वास रखना चाहिये? आदि **व्यक्तिनिष्ठ** इतिहास-अध्ययन के नियम

और इतिहास की संदिग्धता के बारे में महाराजजीने मर्यादा बतायी है. वह नियमों की मर्यादा पुराणादि मे लिखे गये तात्त्विक इतिहास को लागू नहीं होती इसका युक्तिवाद पूर्वक विवेचन और विश्लेषण महाराजजीने किया हुआ मूल में पढना चाहिये. व्यक्तिगत इतिहास को इतिहास के अध्ययन के सारे नियम लागू होते है.

किंतु पुराणादि को तात्त्विक और पारमेश्वरीय इतिहास कहते हुये इस विषयपर उन्होंने ''**पुराणमीमांसा**'' नामक संस्कृत में सूत्रग्रंथ लिखा है. इस में पुराणों की ''**सामान्य सत्ता**'' प्रतिपादित की है. पुराण तथा महाभारतादि में लिखा गया वायु और वृक्ष का झगडा तथा पशुपक्षियों की कथाएं आदि भी सामान्य दृष्टि से सत्य ही है. किंतु उसमें स्थल और काल का संयोग रहता नहीं और बाकी इतिहास में वह रहता हैं. इतना ही दोनों में भेद है, इसका स्पष्टीकरण दिया है. अतएव ''उनपर भी विश्वास रखना चाहिये'' ऐसा महाराजका संकेत हैं.

इस विचार के पुष्टि में उन्होंने वेदान्त के दृष्टिसृष्टिवाद और ऋषिमुनियों के सत्यसंकल्पत्व के जो सिद्धान्त हैं, उनके अनुसार प्रतिपादन किया है.

इस महाराजजी के दृष्टिकोण से यही स्पष्ट होता है कि, पूरे समाज पर सुसंस्कार करने के लिये तात्त्विक इतिहास तथा परमेश्वरीय इतिहास का शिक्षण भी आवश्यक है. अतिप्राचीन काल से यही इतिहास के अध्ययन की रीति आर्यावर्त में रूढ थी. इससे भूतकाल में मानवी समाज को सत्वसंपन्नता जैसी आयी थी वैसेही भविष्यकाल में भी इस अध्ययनदृष्टि का लाभ मानवजाति को अवश्य होगा.

भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल में विद्याभ्यास करनेवालों के लिये कुछ बंधन थे. इसी कारण गुरुकुल मे जाकर १२-१२ साल

शास्त्राभ्यास करनेवाले लोग बहुत कम थे. जनसाधारण अपना परंपरागत व्यवसाय घर में ही सीखतें थे. और उनकी आजीविका चलती थी. ऐसे समाजों कें सभी स्तरों पर नीति, धर्म, उपासना, ज्ञान तथा भक्ति के सुसंस्कार करने का दायित्व पौराणिक, कथाकार, कीर्तनकार आदि लोगों पर था. गांव गांव के मंदिरों में रात्रि भजन, कीर्तन, प्रवचन, तथा पुराणकथा के आयोजन रहते ही थे. पौराणिक नाटकादि तथा मनोरंजक नृत्यादि के भी कार्यक्रम नित्य होते थे.

पुराणकथा विस्तार से समझायी जाती थी. कीर्तनों में संगीत, नाट्यमयता तथा उद्‌बोधनादि सब कुछ रहता था. इसलिये मनोरंजन के साथ धर्म-नीती का संस्कार याने सुशिक्षण भी समाजके सब स्तरोंपर उपलब्ध था.

इसीलिये हिन्दू संस्कृति हजारों सालों से नीतिसंपन्न है. सत्प्रवृत्त है. कर्तव्यपालन में रुचि रखनेवाली है और धार्मिक है. इस्लाम का अत्याचारी राज्य हजार साल रहने पर भी हिंदुओं का भावविश्व विकृत नही हुआ,. विद्या-व्यासंग कम नही हुआ. त्याग के लिए लोकमानस में सम्मान था. स्वार्थ तो प्रत्येक को प्रिय रहता ही हैं किंतु समाजमानस के राजसिंहासनपर त्यागभावनाही विराजमान थी. समाज की सत्प्रवृत्तियां टिकी रहने के लिये कीर्तन प्रवचन तथा कथापुराणों के माध्यम से समाज को उद्‌बोधित किया जाता था. इसीसे भारतीय समाज मानसपर सुसंस्कार होनेसे आर्यो की प्राचीन समाजव्यवस्था की परंपरा अभी तक कायम है. पारंपरिक समाज व्यवस्था में कुछ अपवाद और कुछ दोष भी उत्पन्न होना स्वाभाविक है. किंतु उसमें कमसे कम दोष उत्पन्न होनेवाली और सद्‌गुणों का विकास करनेवाली, समाज के हरेक घटक को सत्प्रवृत्त करनेवाली जीवनपद्धति केवल हिन्दूसंस्कृति में है. यह सत्य अभी पाश्चात्य विद्वज्जन भी स्वीकारने लगे है.

१०-१२ साल पहिले एक यूरोपीय अभ्यासक, महाराष्ट्र में पूना के पास देहातों में मराठी अध्ययन हेतु ४-६ मास रहे. उन्होंने ग्रामीण संस्कृति का अध्ययन किया. यहां से जाते समय एक वार्तालाप में भारतीय ग्रामीण समाज के, बारें में उन्होंने कहा -

''**इलू-लिटरेट् बट् हायली एज्युकेटेड**''

''यहां के ग्रामवासियों को लिखना-पढना नहीं आता किंतु ये कितने सु-शिक्षित/संस्कारसंपन्न है !''

प्राचीन भारतीय शिक्षाप्रणाली की संस्कारक्षमता कितनी समर्थ है, कितनी सूक्ष्म है और भारतीयों के ''जीन्स'' में कितनी भरी हुयी हैं; इसका अनुभव वह यूरोपीय विद्वान को आया. और उन्होंने आर्य संस्कृति को कितना बडा सम्मान दिया !

यही अपने संस्कृति की नित्यनूतनता है !

इतिहास की सीमाएँ

महाराज के मतानुसार, इतिहास के अध्ययन में, उसकी सीमाओं को ध्यान में रखना आवश्यक है. इतिहास की विवेचना करते समय उन्होंने आवश्यकता के साथ, उसकी कमियाँ भी स्पष्ट शब्दों में वर्णन की हैं, और इतिहास की मर्यादा तूल देकर बतलायी है. ''साधुबोध'' में उन्होंने स्पष्ट रूप से कहाँ है कि,

''शास्त्र पढकर भी, जो केवल उसकी भाषा या इतिहास पर ही ध्यान देता है, वह उसका रहस्य नहीं समझ पाता.''

यह बडा मार्मिक विधान है. इतिहास को समझ लेने के लिए अध्ययन हेतु जो लोग पुराणादि पढते हैं, उनका ध्यान रहता है केवल उस की भाषा या इतिहास पर ! इसलिए, अध्ययनशील होते हुए भी, ग्रंथकार का आशय जानने में वे असमर्थ होते हैं. इसलिए इतिहास की सीमाओं का भान रखना आवश्यक है.

आर्यों के इतिहास विषयक प्राचीन संकेतों से ध्यान हट जाने के कारण, इतिहास के बारे में कई गलत धारणाओं ने जन्म लिया. उसी प्रकार, आक्रमणकारियों ने भी, अपने धर्म तथा सत्ता का प्रसार करने हेतु ऐसी विकृत शिक्षापद्धति का आरंभ किया, जिसका दूरगामी प्रभाव हो. हिंदुओंके इतिहास को इसीलिए विकृत बनाया गया. आज भी हम उसका दुष्परिणाम भोग रहे हैं इसीलिये ''आर्य'' शब्द के अर्थ का, और आर्यसंस्कृति की विश्वव्यापिता का पुनर्विचार करनेकी आज प्रमुख अनिवार्यता है.

'आर्य' शब्द का अर्थ

आर्यसंस्कृतिविषयक महाराज के सिद्धांतों का विचार करते हुए, ''आर्य'' शब्द के अर्थ की मीमांसा आवश्यक है. वेद, स्मृतियाँ, पुराणादि में, बौद्ध तथा जैन साहित्य में और संस्कृत एवं प्राकृत वाङ्मय में ''आर्य'' और ''दस्यु तथा दास'' शब्द निर्दिष्ट हुए हैं. वैदिक तथा लौकिक संस्कृत में आर्य शब्द का अर्थ है-

कर्तव्यमाचरन् कार्य, अकर्तव्यमनाचरन् ।
तिष्ठति प्रकृताचारे स वै आर्य इति स्मृतः।। आर्यधर्मोपपत्ति पृ.२४७

'ऋ' धातु गति-वाचक तथा ज्ञान-वाचक है. अतः आर्य याने ज्ञानसम्पन्न, पूजनीय. कर्तव्यों का पालन करते हुए निषिद्ध कृत्यों से बचनेवाला, धर्म का विचार करते हुए अज्ञान की ओर से ज्ञान की ओर बढनेवाला व्यक्ति ही आर्य है.

वेदों में **''यजनशील अथवा शिष्ट''** व्यक्ति को आर्य कहा गया है.

यह तो सर्वविदित ही है कि संस्कृत में पति को **''आर्यपुत्र''** संबोधन प्रचलित है. इस प्रकार वैदिक एवं संस्कृत वाङ्मय में 'आर्य' शब्द का **गुणवाचक अर्थ** ही अभिप्रेत है. 'वंश-सूचक अर्थ कहीं नहीं है.

परंतु **मैक्समूलर** ने 'आर्य' एक वंश मान लिया और **लोकमान्य तिलकजी** ने भी उसीको प्रमाण मानकर प्रतिपादन किया कि आर्य वंश की एक शाखा उत्तर ध्रुवीय प्रदेश से भारत में आयी.

दास 'आर्य' बनेंगे

डा. केतकर ('ज्ञानकोश' के कर्ता, पुणे) के मतानुसार 'आर्य' शब्द के **चार निकष** हैं, और उनके अनुसार आर्य, दस्यु वा दास इनमें कोई भी शब्द वंश-सूचक नहीं है. फिर दस्यु यदि आर्यों के शत्रु थे, तो ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में दोनों का निर्देश 'शत्रु' के रूप में हुआ है, तथा उन्हें जीतने की अभिलाषा है.

आसमन्तमिन्द्रणः स्वस्ति शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम्।
यथा दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्सुतुकानाहुषाणि।।

अर्थ - हे इन्द्र, शत्रुसेना के दमन हेतु हमें तुम अक्षय सम्पत्ति प्रदान करो, जिससे दास आर्य बनेंगे.

काले आर्य

इसी प्रकार, यह कथन भी अर्थहीन है कि आर्य गौरवर्ण थे. कण्व काले थे. इन्द्र साँवले थे. राम, कृष्ण, व्यास भी कालेही थे, परन्तु इन्हें किसीने भी अनार्य नही कहां. अर्थात्, प्राचीन वाङ्मय में 'आर्य' शब्द का प्रयोग गुणसूचक है, वंशवाचक नही.

''कवष ऐलूष'' शूद्र थे, दासीपुत्र थे, फिरभी उनकी विद्वत्ता को परखकर ऋषियोंनें उन्हें अपने में समा लिया. शूद्र रहते हुए भी वे ऋग्वेदकी कतिपय ऋचाओं के द्रष्टा थे. (ऋग्वेद, मंडल १०, सूक्त ३०-४०)

सत्यकाम जाबालि भी यजुर्वेद की एक शाखा के प्रवर्तक थे. (छांदोग्य,४.४) इस प्रकार वैदिक साहित्य से यह स्पष्ट होता है कि शूद्र पुरुष भी **''मंत्रद्रष्टा ऋषी''** बनते थे.

पुरुषसूक्त, महाभारत तथा मनुस्मृति का संदर्भ देते हुए महाराजजी ने प्रमाणित किया है कि ''शूद्रवर्ण भी आर्यों का ही एक अंग था.''

''ब्रह्मदेव से निर्मित, अतएव मूलतया सभी मानव **'हंसवर्ण'** के थे. अपने अपने कर्मों के कारण वे बाद में अन्य वर्णों में परिणत हुए. अपने अपने गुण तथा व्यवसाय के कारण ही वर्णभिन्नता आयी.''

इस प्रकार उन्होंने स्पष्ट किया है कि चातुर्वर्ण्य चाहे गुण-कर्मों से सिद्ध हो अथवा जन्म से, शूद्रवर्ण आर्यों का ही एक अंश हैं.'' साधु. २०७

आर्य अत्याचारी नहीं थे

आक्षेप - ''किसी भारत के बाहरी प्रदेश से आर्य भारत में आये, और यहाँ के मूल निवासियों को जीतकर उन्होने उन्हें दस्यु/दास/शूद्र बनाया, अतः जातिभेद यह धार्मिक अत्याचार है.''

इस आक्षेप को महाराजजी ने ठोस उत्तर दिया है. वे कहते हैं-

''यह उपपत्ति नितांत आधुनिक हैं कि, 'आर्य किसी बाहरी प्रदेश से यहाँ आये. ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य ही आर्य हैं, और शूद्रवर्णीय दस्यु यहाँ के मूल निवासी हैं.''

ऐसा प्रतिपादन करनेवाले (लोकमान्य-तिलक) स्वयं को देश के नेता कहलाते है, परंतु उनकी इस धारणा से शूद्र और ब्राह्मणों में कायम वैर उत्पन्न होगा. शूद्रों के मन में सदैव यही भावना रहेगी कि आर्योंने हमें गुलाम बनाया. उन्हें ऐसा भी लग सकता है कि गुलामी में रखने हेतु ही वेदाधिकार से हमें वंचित रखा.

यह आर्य-आगमन का सिद्धान्त गलत, अनैतिहासिक और अनुचित हैं. वह व्यर्थ ही भेद उत्पन्न करता है; तथा शूद्रवर्ण को अनार्य मानना देश के लिए भी क्षोभकारक है.

लोकमान्य तिलकजी के प्रति सम्मान होते हुए भी उन्होंने अपना

मत आत्मविश्वास के साथ प्रदर्शित किया है. वे कहते हैं -

''आर्योंके बाहर से भारत में आगमन'' की बात करनेवाले, अपने राष्ट्रीय पक्ष के कारण लोक-मान्य (लोगों द्वारा मान्य) हैं, इसलिए उनपर टीकाटिपणी करनेवाला मैं बहुजन-समाज के लिए उपहासका विषय बनूंगा. यह मैं जानता हूँ, परंतु धार्मिक दृष्टि से मेरा दृष्टिकोण सही है, इसलिए मै बहुजन-समाज की परवाह नहीं करता.''

अपनी विवेचना के समर्थन में महाराजजी ने शांतिपर्व (महाभारत) के श्लोक प्रमाण के रूप में लिये है.

मूलतया सभी आर्य थे, परंतु अन्य सभी प्रदेशों के आर्य भयानक संस्कार-लोप के कारण, पौण्ड्रक, यवन, शक, किरात, खश, चीनी, इ. क्षत्रिय जातियाँ म्लेच्छ बन गयी. आज भी हम देखते हैं कि संस्कारों का शीघ्रता के साथ लोप हो रहा है, धर्माचरण छूट रहा है.

- इसलिए यह स्पष्ट है कि केवल शूद्र ही नहीं, अपितु दुनिया की सभी म्लेच्छ जातियाँ भी मूल रूप से आर्य ही थी, परंतु संस्कारलोप के फलस्वरूप उन्हें म्लेच्छत्व प्राप्त हुआ.

इस प्रकार, दुनिया की सभी वंश और जातियाँ, एक समान संस्कृति की थी. उनकी दृष्टि में आर्यो को कोई भी मानवजातियाँ परायी नहीं है. उनका स्पष्ट मत है कि एकही ईश्वर द्वारा निर्मित सभी मानव एकही वर्ण के थे, परंतु धर्माचरण के त्याग का ही परिणाम है कि वे प्रथम चार वर्णों में और बाद में यवन-म्लेंच्छादि जातियां में विभाजित हुए. इसीलिए, सभी लोगों को आर्यधर्म के सर्वोच्च पारमार्थिक सिद्धान्त पढ़ाने

में उन्हें कोई संकोच प्रतीत नहीं होता.

आर्य / दस्यु / दास : गुणवाचक

तर्क के निकष पर उन्होंने प्रमाणित किया है कि -

'आर्य' शब्द का अर्थ है ''सुसंस्कारों से सम्पन्न, धर्माचरण करनेवाला व्यक्तिविशेष !

इसी प्रकार, 'दस्यु' तथा 'दास' शब्द भी गुणवाचकही है - अतः आर्य वाङ्मय के आर्न्तप्रमाणों के अनुसार, 'आर्य' शब्द किसी वंश का बोधक हो ही नहीं सकता.

अनार्य का लक्षण

प्राचीन वाङ्मय में सदाचरण या असदाचरण के आधारपर ही 'आर्य/अनार्य/दस्यु/दास' ये संज्ञाए संस्कृत में प्रयुक्त है. परंतु यदि किसी का दुराग्रह है कि 'अनार्य' शब्द 'शूद्र' जातिका ही बोधक हैं, तो उनको श्रीगुलाबरावमहाराज के उत्तराधिकारी **संत श्रीबाबाजीमहाराज पंडित** जी का उत्तर है की, -

''हिंदुधर्म के अनिवार्य घटक 'शूद्र' वर्ण को 'अनार्य' श्रेणी में डालकर हिंदु समाज में कलह के बीज बोनेवाले, और स्वयं को 'आर्यवंशी' कहनेवाले, परंतु वास्तव में आर्य धर्म से दूर रहनेवाले, पाश्चिमात्य म्लेच्छ ही वस्तुतः 'अनार्य' संज्ञा के पात्र है. महाभारत तथा मनुस्मृति से भी यही सिद्ध होगा. आर्यों को अनार्य कहकर, स्वयं अनार्य होते हुए भी स्वयं को आर्य कहलवानाही अनार्यत्व का-असंस्कृतता का प्रधान लक्षण है.''

(आर्यधर्मोपपत्ती - पृ. २५४)

× × ×

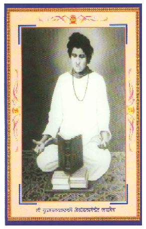

२

यूरोपीय विद्वानों द्वारा भारत-गौरव

“स्व-उत्कर्षबोधक इतिहास”

ब्रिटिश शासक तथा ईसाई मिशनरियों द्वारा किये गये कुत्सित् प्रसार के फलस्वरूप भारतीय भी प्राचीन आर्यो के इतिहास-दर्शन-साहित्य-शास्त्र-संगीत आदि को कुत्सित दृष्टि से देखने लगे. परिणामतः पुरानी विशुद्ध शास्त्र परम्पराएँ नष्ट होती गयीं और भारतीय मन भी भौतिकवाद के, भोगलोलुपताके पीछे दौडने लगा. इस पृष्ठ-भूमिपर, अंग्रेजी रक्त के परंतु आर्य संस्कृति का विशुद्ध मन से अध्ययन करनेवाले यूरोपीय पंडितों ने जो गौरवोद्‌गार भारत के संदर्भ मे प्रकट किये, उन्हें समझ लेना अनिवार्य होगा. अपने पूर्वजों के संबंध में अपनी गलत धारणाओं को मिटाने में ये उद्‌गार सहायक रहेंगे. यूरोपीय पंडितों द्वारा बताया गया ‘‘भारत का उत्कर्षबोधक इतिहास’’ उन्हीं के शब्दों में परीशीलन करना श्रेयस्कर रहेगा.

‘‘**सर विलयम जोन्स, प्रा. विल्सन, कोलब्रुक, मैक्समूलर कर्नल टॉड, पोकौंक** आदि यूरोपियन पंडितों तथा इतिहासज्ञों ने प्राचीन हिंदु राष्ट्र की जो सरहाना की है, उसका महत्व ‘‘साक्ष्य’’ के रूप में विशेष महत्वपूर्ण है.

इन पाश्चात्यों के मत यह समझकर नहीं उद्‌घृत किये हैं, कि यूरोपीयनों के शब्द वेदवाक्य के समान अकाट्य है, अपितु इसलिए, कि प्रतिष्ठित किंतु पराये मनुष्यों की गवाही न्यायालय में

भी विशेष महत्वपूर्ण मानी जाती हैं.

यूरोपीयन पण्डित यदि हिंदुस्थान के प्रति अनादर दर्शाते तों वह अधिक स्वाभाविक होता, क्योंकि उन्हें हिंदु राष्ट्र के प्रति ममत्व हैही नहीं. फिर भी उन्होंने हिंदुस्थान का गौरवगान किया- या तो सम्पूर्ण आलोडन के बाद पूरे विश्वास के कारण, या फिर अन्य कोई रास्ता न पाकर. प्रथम निंदक, फिर गुणग्राहक, तथा तत्पश्चात् स्तुतिपाठक बने हुए व्यक्तियों द्वारा की हुई स्तुति निश्चित रूप से उल्लेखनीय है. चारणकृत स्तुतिपाठ की अपेक्षा उसकी योग्यता अधिक है.’’

(द.गो.लिमये - भारतीय श्रेष्ठत्व- प्रस्तावना)

१.प्राचीन भारत में इतिहासलेखन

राजपूताना के इतिहास की प्रस्तावना में **कर्नल टॉड** कहते हैं, ‘जब से भारत पर महमूद द्वारा आक्रमण होना शुरू हुआ, तब से मुस्लिम शासकोने जो निष्ठुर धर्मांधता दिखायी, उसको नजर में रखने पर, बिलकुल आश्चर्य नहीं होता कि भारत मे इतिहास के ग्रंथ बच नहीं पाये. इसपर से यह असंभवनीय अनुमान निकालना भी गलत है कि ‘‘हिंदु लोग इतिहास लिखना नहीं जानते थे.’’ अन्य विकसित देशों में इतिहासलेखन की प्रवृत्ति प्राचीन काल से पायी जाती थी, तो क्या अतिविकसित हिन्दूराष्ट्र में वह न होगी? जिन्होंने ज्योतिष-गणित आदि श्रमसाध्य शास्त्र सूक्ष्मता के साथ, और परिपूर्णता से अपनाये, वास्तुकला, शिल्प, काव्य, गायन आदि कलाओं को जन्म दिया, इतनाही नहीं, उन कलाओं को नियमबद्ध ढाँचे मे ढालकर उसके शास्त्रशुद्ध अध्ययन की पद्धति सामने

रखी, उन्हें क्या राजाओं का चरित्र, और उनके शासनकाल मे घटित प्रसंगो को लिखने का मामुली काम करना न आता?''

प्राचीन काल मे भी, काश्मीरनिवासी कल्हण द्वारा लिखित ''राजतरंगिणी, विजय-विलास, सूर्यप्रकाश, खिमात, जगद्विलास, राजप्रकाश, जयविलास, मानचरित्र, खोमानरासा' आदि राजस्थान का इतिहास प्रकट करनेवाले ग्रंथ, गुजरात की जानकारी देनेवाले 'रासमाला, पृथ्वीराजरासो'आदि अनेकानेक ग्रंथ उपलब्ध थे.

अबुल-फजल ने प्राचीन भारत की जानकारी दी है - उसका मूल स्त्रोत कुछ तो होगा ही? ''पृथ्वीराजरासो'' पढ़कर लगता है कि उस समय अन्य भी कई इतिहासग्रंथ विद्यमान थे. इसको लिखनेवाला चंदबरदाई को, केवल उसके भाट होने के कारण अनाडी मानना अनुचित होगा. शासनप्रणाली, परराष्ट्रनीति, राजनीति आदि के विषय में चंदबरदाई ने जो लिखा है, वह निश्चित रूप से दर्शाता है कि भाट समाज अनाड़ी नही थे.

(हिन्दू सुपीरियारिटी - पं. हरविलास सारडा- पृष्ठ. १६)

(It is to be imagined that a nation so highly civilised as Hindus amongst whom the exact science flourished in perfection, by whom the fine arts, architecture, sculpture, poetry, music were not only cultivated, but taught and defined by the nicest and most elaborate rules, were totally unaccounted with the simple art of recording the events of their history, the characters of their princes and the acts of their reigns ?)

२ काल प्रभाव से परिवर्तन

किसी देश की संस्कृति की प्राचीनता को भांपने के लिए यह गृहीत सिद्धांत ठीक न होगा, कि वर्तमान काल मे जहाँ जंगली लोग बसते हैं, वह प्रदेश शुरूसे ही इसी अवस्था मे था. कभी कभी किसी विकसित देश की सभ्यता भी ज्वालामुखी,

प्रचंड बाढ या भूकंप के कारण नष्ट हो सकती है.

फिर एकाध प्रदेश यदि प्राचीन काल मे जंगली अवस्था मे हो तो विश्व के सारे देश कि स्थिति भी जंगल जैसी हो, यह भी गृहीत समझना गलत है.

यूरोप, मिस्त्र, दक्षिण तथा उत्तर अमेरीका, भारत आदि देशों के प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास मे जो फरक दिखाई देता है, उसकी संगति उपर्युक्त विधान से लगती है.(भारतीय श्रेष्ठत्व - २१)

३ समूची पृथ्वी का मानचित्र

काउंट जार्नस्टजर्ना लिखते है, ''भारत की प्राकृतिक शोभा देखकर लगता है, मानों सृष्टिदेवी ने अनोखे रंगों का कीमती वस्त्र ओढ रखा हो. ग्रीष्मकाल में उगनेवाली वनस्पतियाँ, वर्षाकाल के तूफान, हिमालय की हिमानी भव्यता, मरुस्थलों की रुक्षता, उत्तरप्रदेश के विस्तीर्ण मैदान, आदि देखकर सृष्टि की विविधता, और भव्यता विस्मित किये बिना नही रहती.''

(Theogony of hte Hindu's P.126)

काउंट जार्नस्टजर्ना के मतानुसार,''इस देश की विविधता तथा भव्यता और चमत्कृति देखनी हो तो देखिये, राजपूताना का लोहकवचधारी योद्धा और काशी के देवालय के धर्मनिष्ठ ब्राह्मण को, लडाकू जहाजों या चप्पल घोडों पर आरूढ मराठा और मंदगति हाथी पर आरुढ नवाब को, अपनी कामवासना को देवालय में जला डालनेवाली देवदासी या जंगल मे सहजता से वाघ की शिकार करनेवाली वीरांगना को !''

(Theogony of the Hindu's P.126)

म्यूर नामक इतिहासवेत्ता के मत में, ''भारत के प्राकृतिक सौंदर्य की भव्यता, विविधता और वनस्पतियों का उत्पादन को समूची दुनिया में बराबरी नही.'' *(हिंदुस्थान का इतिहास, पृष्ठ 1 Muer)*

किसी लेखक का कथन -

" India is an epitone of the whole world "

यह समूचा सत्य है.

४ प्रथम मानव : भारत में

सर वाल्टर रैले - "History of World" में पृष्ठ ९९ पर लिखते हैं कि ''पहला मानवप्राणी भरतखण्ड में निर्माण हुआ.''

५ मानवसंस्कृति का उद्‌गम : भारत में

काउंट जार्नस्टजर्ना ने "Theogony of Hindus" में पृष्ठ १६८ पर, तथा **कर्नल अल्काट** ने (थियासफी

के मार्च १८८१ के अंक मे लिखा है कि, ''मानवीय संस्कृति का उद्‌गमस्थान भारत-वर्ष ही है.''

६ सभी ज्ञानशाखाओं- धर्मों का उत्पत्तिस्थान

श्रीमती मैनिंग- Ancient and Mediaevel India Vol. II

के पृष्ठ १४८ पर ने लिखा है कि,

''हिन्दूराष्ट्र के मन तथा बुद्धि की उड़ान इतनी ऊंचाई तथा दूरीपर पहुँची है कि वहाँ विश्व का अन्य कोई राष्ट्र नही पहुँच सकता.''

प्रा. हीरेन भी Historical Researches, Vol.II के पृष्ठ ४५ पर मत दर्शाते हैं कि, ''न केवल एशिया खण्ड के, अपितु यूरोप खंड के लोगों के भी ज्ञान या धर्मों का मूल स्रोत भारत में पाया जायेगा.''

७ ऋग्वेद का काल

सर हंटर के मतमें 'ऋग्वेद का काल अगम्य है,''

मैक्समूलर ने कहा है कि,''अखिल मानवजाति के पुस्तकों में

ऋग्वेद सबसे प्राचीनतम है.''

८ भारत का अखण्ड ऋण

जब **वोल्टेयर** को ऋग्वेद की एक प्रति अर्पित की गयी, तब उसके उद्‌गार थे -

''यह देन इतनी अमूल्य है कि पाश्चात्य राष्ट्र सदैव पौरस्त्यों के ऋण में रहेंगे.''

लेओन डेलवोस के शब्द है - ''ऋग्वेद के सामने ग्रीस तथा रोम के किसी भी स्मारक की योग्यता टिक नही पायेगी.''

९ वेदोंका अध्ययन करे

मैक्समूलर का हार्दिक कथन है, कि ''दुनिया के इतिहास में वेदों ने वह काम किया है, जो अन्य किसी भी भाषा का कोई भी ग्रंथ कर नहीं सकता था. इसलिए, अपने पूर्वजों के तथा मानवजाति के हर अभिमानी को चाहिए कि वह वेदों का अध्ययन करे.[भा. श्रे.१३४]

१० स्त्रियों की ज्ञानलालसा

प्रो. बेरर - ''मानवी मन के लिए अत्यंत दुष्कर विषयों के विवेचन तथा उद्‌घाटन के लिए उस कालखण्ड में ब्राह्मण ग्रंथ अति उत्साही थे. वेदान्त के समान अगम्य सिद्धांतों का भी प्रतिपादन उन्होंने किया.

ज्ञान के अटूट लालसा के साथ स्त्रियाँ भी उसमें प्रयत्नशील रही. उस गूढ विषय में प्रवेश पा, गंभीरता तथा सूक्ष्मेक्षिता से वे मर्म को ढूंढ लेती थी, और अपनी गहराईसे पुरुषजातिको भी विस्मित कर छोडती थी. ब्राह्मणग्रंथो में उस काल की यही उज्वल प्रतिमा दिखाई पडती है.'(भा.श्रे.१३४)

११ प्राचीनतम राष्ट्र- फिर भी पुरा सशक्त

''एडिनबरो रिव्यू'' अक्तूबर १८७२ में लिखा गया है, ''विश्व के

उपलब्ध इतिहास में जिन प्राचीन राष्ट्रो का केवल नामोल्लेख मात्रही मिलता है, उनमें संस्कृति का सूर्य उदित होने के पहलेही, हिंदु राष्ट्रका संस्कृतिसूर्य पूरे तेज के साथ चमक रहा था. जिन के अवशेष अभीतक विद्यमान है, ऐसे प्राचीन राष्ट्रो में हिंदुराष्ट्र प्राचीनतम है. फिर भी संस्कृति एवं सभ्यता के क्षेत्र मे आज तक कोई भी राष्ट्र उसे जीत न पाया.''

<u>१२ भारत की सीखें</u>

मैक्समूलर - ''इंडिया व्हॉट कॅन इट टीच अस?'' इस ग्रंथ मे पृष्ठ ४५ पर ने मतप्रदर्शन किया है- ''कोई यदि मुझे पूछे कि मानवी अंतःकरण तथा बुद्धि की परिपूर्णता एवं शक्ति किस देश में चरम सीमातक पहुँची है? संसार के गूढतम रहस्यों-प्रमेयों का सूक्ष्मतम विश्लेषण किस देश में हुआ है? प्लेटो, कैंट आदि के दर्शन पढ़ने के बाद भी अध्ययन-योग्य प्रमेय किस देश मे सुलझाये गये हैं - तो मैं त्रिवार उत्तर दूंगा-हिंदुस्थान में.''

''यूरोपिय राष्ट्रो के विचार, वाङ्मय तथा संस्कृती के स्त्रोत तीनही रहे हैं - ग्रीस, रोम तथा इज्रायल. अतः उनका आध्यात्मिक जीवन अधूरा है, संकीर्ण है. यदि उसे परिपूर्ण, भव्य-दिव्य और मानवीय बनाना है, तो मेरे विचार में, भाग्यशाली भारतखंड का ही आधार लेना पडेगा.''

''मानवी जीवन के, मन-बुद्धि के विकास के लिये विविध क्षेत्र विद्यमान हैं- भाषाएँ, धर्म, पुराण-कथाएँ, कायदे-कानून, रस्म-रिवाज, कलाएँ, शास्त्र आदि. यदि इनमें से किसी एक विधी का विशेष अध्ययन करना हो, तो हिन्दुस्थान की शरण लेनीही पडेगी. दूसरा पर्याय है ही नही. क्योंकि मानवी इतिहास का सबसे महत्वपूर्ण

तथा सर्वाधिक बोधकारक संचय भारत में - केवल भारतही में है.''

<u>१३ विशाल ग्रंथसम्पदा काव्य रूप में</u>

प्रा. मैक्स डंकरने कहा है -

''संस्कृत के ग्रंथ-भाण्डार की गणना करना असंभव है. भारतीयों की सहज-प्रवृत्ति ही काव्यमय है. अतः कोई आश्चर्य नहीं कि उनके द्वारा इतने काव्यग्रंथ निर्मित हुए. आज उपलब्ध ग्रंथ संख्या से ही हम विमुग्ध हो उठते है, फिर पुच्छ-विषाण-रहित नरपशुओं के धार्मिक अत्याचार में जिन असंख्यात ग्रंथों की बलि चढ़ गयी, उनकी निश्चित संख्या यदि हम जान पाये, तो हमारे आश्चर्य और आनंद को सीमा ही न रहेगी.''

<u>शास्त्रीय रचना भी काव्य में</u>

''काव्य की और स्वाभाविक रुझान के कारण, ज्योतिष, विज्ञान, धर्मशास्त्र आदि ग्रंथ भी काव्यमय शैली में लिख गये. जिन ऋषियों ने त्रिकालाबाधित सत्य का प्रतिपादन भी रसमयी काव्य-मोहिनी के माध्यम से किया, उनके वंशजों को यदि कवित्वशक्ति परंपरासे ही प्राप्त हो चुकी तो फिर क्या आश्चर्य ?''

<u>१४ ८००० साल पूर्व बाक्ट्रिया में हिन्दू राजा</u>

''**सर विल्यम जोन्स** को कश्मीर में एक बाक्ट्रियन लेख मिला, जो बाद में यूरोप भेजा गया. इस देश में कतिपय राजाओं की नामावली थी, जिसके अनुसार -

''अलेक्झांडर के आक्रमण के ५६०० वर्ष पूर्व बाक्ट्रिया प्रदेश में हिन्दू राजा का शासन था. ईस.पूर्व ६००० के लगभग, याने यूरोपीय विद्वानों के मतानुसार मानवप्राणी की उत्पत्ति के समय भरतखण्ड की संस्कृति कितनी उच्च थी, इस बात का प्रमाण

मिलता है.'' -**काउंट जार्नस्टजर्ना** (थिऑगनी ऑफ हिन्दूज पृ.१३४)

१५ राज्य-कलह : कारणमीमांसा

यूरोप भारत तुलना

राज्यपद्धति चाहे कोई भी हो, समाज के आध्यात्मिक, नैतिक तथा सामाजिक मूल्य यदि ऊँचे हैं, तो वह प्रजा के लिए सुखकर होगी. परंतु इन मूल्यों के अभाव में, राज्यपद्धति कितनी भी ऊँची क्यों न हो, वहाँ व्यक्ति-व्यक्ति में, पक्षों-पक्षों में, वर्गो-वर्गो मे स्पर्धा के नाम पर स्वार्थ-हक हेतु कलह बने रहेंगे. यूरोप-अमरीका में शासनपद्धति तो जनतंत्रात्मक है, फिर भी वहाँ कलह रहता ही है.

इसके विपरीत भारत में उत्कृष्ट राज्य-पद्धति के लक्षण दिखते है. सत्ता के अधिष्ठान की दृष्टि से सोचनेपर राज्यपद्धति के कई भेद होंगे-राजसत्ताक, महाजनसत्ताक, लोकसत्ताक, प्रतिनिधिसत्ताक आदि. परंतु प्रजा के सुख या समृद्धि को केन्द्र मानो, तो यही सिद्धान्त माना जायेगा कि ''जो राज्यपद्धति सु-जनों को श्रेष्ठता प्रदान करेगी तथा बुद्धिहीन दुराचारियों को दबायेगी, वही राज्यपद्धति सक्षम मानी जाये. प्राचीन भारत में यही व्यवस्था थी.''

अतः प्रा. मैक्स डंकर लिखते है कि

''पृथ्वी के सभी राष्ट्रों मे प्राचीन भारतीय राष्ट्रव्यवस्था सर्वोत्तम थी.'' (हिस्टरी ऑफ अँटिक्विटी खंड२,पृ. १८)

१६ उत्कृष्ट शासन

''जो शासन शीलवान्, उदारमनस्क, गुणवान, बुद्धिमान तथा संवेदनशील व्यक्तियों का उत्कर्ष कराता है तथा संकीर्ण विचारधारा के दुराचरणी बुद्धिहीनों को उपर नहीं चढने देतां, वहीं शासन अति उत्कृष्ट होता है. प्राचीन भारत का विचार इस निकष पर करें, तो माननाही पडेगा कि वहाँ की शासनप्रणाली उत्तम थी. (हिस्टरी ऑफ अँटिक्विटी खंड२,पृ. १८)

१७ प्राचीन हिंदुस्थान में उत्तम राज्यपद्धति

प्रो. मॅक्स डंकर -

''सत्ता के मूलाधार के दृष्टि से राज्यव्यवस्था का वर्गीकरण किया जाये तो (१)राजसत्ताक (२)महाजन सत्ताक (३)प्रतिनिधीसत्ताक (४)लोकसत्ताक;
यह चार प्रकार का अनुमान होते है.

किंतु प्रजाजन के सुख और उन्नति की दृष्टिसे विचार किया जाये तो सर्वमान्य सिद्धान्त ऐसा निकलेगा कि,

* उच्चशीलसंपन्न, उदार मनस्क, व्यापक सहानुभूतियुक्त, सद्गुणोंसे पूर्ण और बुद्धिमान प्रजाजनों को जो राज्यव्यवस्था श्रेष्ठत्व देती है, और

* शीलहीन, स्वार्थी मानस के, संकुचित दृष्टि के दुराचरणी और बुद्धिहीन लोगों को जो राज्यव्यवस्था उच्च पदोंपर विराजमान नहीं होने देती, वही राज्यपद्धति उत्तम है ....

यह कसौटी प्राचीन हिन्दूस्तान को लगायी जाए तों वह प्राचीन राज्यव्यवस्था बहुतही उत्कृष्ट थी- ''विश्व के सारे राष्ट्रों में प्राचीन भारतीयों का राष्ट्र सबसे श्रेष्ठ या ''ऐसा ही हर एक बुद्धिमान व्यक्ति का मत बनेगा इसमे संदेह नही. (हिस्टरी ऑफ

ॲंटिक्वीटी खंड२ पृष्ट१८- भा. श्रे.२९)

१८ भारत और यूरोप की तुलना

*** प्रो. स्ट्रॅबो** ने लिखा है कि -

''प्राचीन भारतखंड मे चोरी करनेका नाम भी नहीं था.''

*** डॉ. प्रो. जॉन्सन** कहते हैं कि,

''अति विकसित पाश्चात्य राष्ट्रोंकी राजधानियां याने सैतान के निवास का घर है. रात्रि के समय में रास्ते में सैर करना याने मृत्यू की तैयारी करना है. और दुसरों के घरों मे सोने के लिये जाने का हो तो प्रथम स्वयं का मृत्युपत्र लिखा जाना आवश्यक है.'' ऐसा जिस काल का **डॉ. जॉन्सन** अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करते है वह प्राचीन काल में -

''घरों के द्वार किसलिये बंद करना चाहिये और किसलिये ताला लगाना चाहिये? यह भी सुसंस्कृत हिन्दूओं को मालूम नहीं था.''

मॅगस्तनिस् ने लिखा है कि,

''सम्राट चंद्रगुप्त के सैन्य के पडाव में चार चार लक्ष सैनिक होने पर भी, वहांपर हर रोज छोटी छोटी चोरियां ३० रुपयों से जादा कभी नहीं थी.''

''इससे वह काल में नागर संरक्षण व्यवस्था (पोलिस यंत्रणा) भी कितनी मजबूत थी इसका अनुमान निकाला जा सकता है.''

इंग्लैंड मे महारानी व्हिक्टोरिया के काल तक पोलीस यंत्रणा का अस्तित्व ही नहीं था यह बात ध्यान में रखना चाहिये.' (भा. श्रे. ३०,३१)

१९ लोकसत्ताओं का संघ - प्राचीन भारत

ले. कर्नल मार्क बिल्कस हिस्टॉरिकल स्केचेस ऑफ दि

साऊथ ऑफ इंडिया खंड१,पृ. ११९) में कहते हैं -

''लोकप्रतिनिधी सत्ताक राजपद्धति हिन्दूओं के सपनों में भी नहीं थी, और वह सभी हिन्दूओं के राजकीय मानस को भाने की बात ही नही थी'' - ऐसी धारणा बहुत सारे विद्वानों की है. किंतु वह पूर्ण रूपसे गलत है.

''प्राचीन काल से भारत में प्रत्येक ग्राम या नगर एक छोटासा किंतु स्वयंपूर्ण लोकसत्ताक राज्यही था. और पुरा हिन्दूस्तान याने ऐसे छोटे छोटे स्वयंशासित ग्रामराज्यो का प्रचंड संघ ही था.''

२० व्यक्ति की स्वतन्त्रता

'एरियन' ने कहा है, ''प्राचीन भारत में हर व्यक्ति स्वतंत्र था.'' इतनाही नहीं अपितु -

२१ लोकसत्ताक के बीज

'मिल' के समान दुराग्रही तथा अहंकारी इतिहास के पंडित ने भी माना है कि -

''हिन्दूस्तान की प्राचीन राज्यपद्धति तथा विधिप्रणाली में जनसत्ता के बीज स्पष्ट रूप से दिखाई पडते है.''

२२ स्वयम्पूर्ण लोकसत्ताक नगर

सर चार्लस मेटकाफ ने भारतीय ग्रामसंस्थाओं का वर्णन करते हुए लिखा है,

''ग्रामसंस्था रूपी इस लघु लोकसत्ताक राज्य की प्राय: सभी आवश्यकताएँ गाँव में ही पूरी हो जाती है. परायी सत्ता का अंकुश उनपर नहीं हैं. अन्य सभी बाते क्षणजीवी लगती है, परंतु ये ग्रामसंस्थाएँ सनातन है.

एक के बाद एक कई राजकुल नष्ट हुए, कई क्रांतियाँ

हुई, पठान, मुगल, मराठा, सिक्ख, अंग्रेज आदि कईयों की सत्ता बारीबारी से इस देशपर चली, परंतु इस भयानक उथलपुथल में भी ग्रामसंस्थाएँ पूर्ववत टिकी है. इन छोटे छोटे लोकसत्ताक राज्यों का संघ बनने के कारणही हिन्दू लोगों को राजकीय स्वतंत्रता, स्वावलंबन तथा राजकीय सुविधाओं का लाभ मिला है.''

The village Communities are little republics having nearly everything they can want within themselves and almost independent of any foreign nation.

They seem to last where Nothing lasts. Dynasty after dynasty tumbles down revolution succeeds revolution and Pathan, Moghul, Marhatha, Sikha, English are all Mastesr turn, but the village Communities remain the same. This union of village communities each one forming a little state in itself, is in a high degree conducive to their (Hindu) happines and to the enjoyment of a great portion of freedom and independence. (Report of the Select Committee Vol III of the House of Commons 1832 / भा.श्रे.पृ.३१-३२)

२३ ग्राम राज्यों की एकसूत्रता

''कोई सोचेगा कि -

''ये छोटी छोटी ग्रामसंस्थाएँ रेतके कण के समान एकत्रित होकर भी घटक रूप में पृथक पृथक थी, एकाकार नहीं थी.''

परंतु वास्तविकता यह है कि -

''प्रत्येक ग्राम के समूह-समूह पर राजा के अधिकारी नियुक्त थे और सारे ग्राम एक सूत्र मे बंधे हुये थे'' - *मनुस्मृति (७-१२३-१२४)*

किसी राज्यव्यवस्था की बुराई-भलाई मापने का निकष है -

उसमें प्रचलित धर्मशास्त्र और कानून की व्यवस्था! भारतीयों के धर्मशास्त्र का प्रमुख ग्रंथ है मनुस्मृति : मनुस्मृति की रचना सरल है, और वह नियमोंसे बद्ध है तथा दूर-दृष्टि एवं समझदारी का परिचायक भी है. ये नियम परविर्तनशील नहीं हैं, फिर भी इतने व्यापक हैं कि समाज के सभी विभिन्न व्यक्तिगत सम्बन्धों के लिए पूरे पडेंगे. (भा. श्रे. पृ. ३२)

२४ यूरोप में 'मनु-स्मृति' का प्रभाव

सर विल्यम जोन्स ने लिखा है,

''ग्रीक स्मृतिकार सोलन या लायकरगस निर्मित कानूनों से भी मनुस्मृति प्राचीनतर होनी चाहिए. **क्रीट द्वीप** के प्राचीन कानून मनु के धर्मशास्त्र पर आधारित लगते है. लायकरगस द्वारा ये ही कानून स्पार्टा में लाये गये होंगे.''

The Bible In India के लेखक का तो यह मत है कि ''मिस्र, ईरान, ग्रीस तथा रोम के कानून यह सभी मनुस्मृति की नींव परही खडे हैं. आज भी, यूरोप के न्यायालयों में मनुस्मृति का ही प्रभाव दिखाई देता है.''

प्रा. विल्सन का कथन है कि ''**डेसेमव्हरेटे** के शासनकाल में भारतीय स्मृतियों के आधार पर ग्रीकों ने कानून तैयार किये होंगे. फिर ग्रीक कानून से रोमन और रोमन से अंग्रेजी कानून निर्मित हुए होंगे.''

The मनुस्मृति was the foundation upon which the Egyptian, The Persian, - The Grecian, and the Roman codes of law were built, and the influence of मनु was still every day felt in Europe.

२५ अति प्रगत समाज के नियम

विल्सन ने यह भी प्रतिपादन किया है कि ''हिंदुओ के स्मृतिग्रंथों मेंग्रथित, विभिन्न समाजों के लिए उपयुक्त नियम तैयार करनेवाला समाज निश्चित

रूप से अति विकसित होगा, अन्यथा इतने परिपूर्ण नियम नही बना सकता.''

२६ राजा को भी निष्ठुरता

प्रा. कोलमन ने ''मायथॉलॉजी ऑफ हिंदूज'' नामक ग्रंथ में अभिप्राय दिया है, ''कानून के ग्रंथ के लिए आवश्यक रहनेवाली उदात्त-गंभीर शैली मनुस्मृति में विद्यमान है. आदर के साथ उससे कानूनका कुछ भय भी होता है. प्रत्यक्ष राजा को भी न्यायनिष्ठुर नियंत्रण का सामना करना पडता था, जो कि सचमुच उच्च श्रेणी की न्यायप्रियता का प्रदर्शक है.''

"The style of मनु has a certain austere majesty that sounds like the language of legislation and extorts a respectfull awe? The sentiments of indepence on all beings but God and harsh admontions even to kings are trully noble."

२७ मनु स्मृति का आदर

मद्रास हाइकोर्ट के चीफ जस्टिस सर थामस स्ट्रेज ने लिखा है, ''इस शास्त्र (मनुस्मृति) के अध्ययन से प्रत्येक अंग्रेज विधिज्ञ लाभान्वित होगा.

केवल मनुस्मृति पढ़ने से भी उसके मन में आदर तथा हर्ष की भावना उभरे बिना न रहेगी.''

"Hindu Law of Evidence will be read by every English lawyer with a mixture of admiration and delight; as it may be studied by him to advantage."

सांख्यदर्शन

२८ सांख्यकारों कि सूक्ष्म बुद्धि

श्रीमती मैनिंगन ने प्रतिपादन किया है कि - ''मानवी

जीवन के रहस्यों का उद्घाटन करके विश्वको उद्बोधित करने में जो परिश्रम सांख्यवादियों ने उठाये, वे बेजोड हैं.''

''उनके विवेचनों से लगता है कि, जितना लिखित रूप में दिखता है, उससे कई गुना अधिक उनके मस्तिष्क में संचित था.''

२९ उत्क्रांतिवाद : सांख्य का अनुवाद

सर हंटर ने भी कहा है,

''विश्व की उत्पत्ति, स्थिति तथा उत्कर्ष की जो विस्तृत विवेचना सांख्यवादियों ने की है, उसका केवल अनुवाद मात्र, नूतन भाषा एवं दृष्टि के साथ उत्क्रांतिवादियों के लेखन में मिलता है.''

उपनिषद्

३० यूरप का ज्ञान अधूरा

मैक्समूलर का मत है कि,

''जिसने बर्कले, दर्शनों का, उपनिषदोंका, तथा ब्रह्मसूत्रों का, समान रूपसे अध्ययन किया हो, वह विश्वास के साथ कहेगा कि उपनिषद् तथा ब्राह्मणों के सामने बर्कले का दर्शन नितांत अधूरा और बौना है.''

३१ शांकर भाष्य की महत्ता

शांकरभाष्य के सम्बन्ध में लिखते हुए तो **सर विल्यम जोन्स** यहाँ तक लिखा है,

''आचार्य-भाष्य का जबतक किसी यूरोपीय भाषा में सुचारु अनुवाद नही होता, तबतक दर्शन का इतिहास पूरा हो ही नही सकता. भाष्य की महत्ता गाते हुए साक्षात् सरस्वती भी थक जायेंगी.''

३२ भारतीय बुद्धि की सराहना

भाष्य की शैली के संदर्भ मे **मैक्समूलर** के उद्गार हैं -

''मीमांसा की विवेचन पद्धति में पूर्वपक्ष, उत्तर पक्ष और सिद्धान्त यह क्रम रहता है.

हम पाश्चात्य क्रमशैली पर मुग्ध हैं. दुनिया में चमत्कृतिजनक ग्रंथों की कमी नहीं, परंतु इस ग्रंथ की महत्ता अपूर्व है. जिसके मास्तिष्क की यह उपज है, वह धन्य हो! ज्ञान-प्रसार का इतना सुव्यवस्थित, सरल एवं सर्वसंग्राह्य साधन को जन्म देनवाले भारतीयों की बुद्धि की जितनी भी सराहना की जाये, कम ही होगी.''

३३ उपनिषदों की महत्ता

जर्मन दार्शनिक **शोपेनहवर** ने तो स्पष्टरूप से प्रतिपादित किया है, ''यहूदी धर्म की अंधश्रद्धायुक्त, मूर्खतापूर्ण धारणाओं से मेरा मन संकीर्ण हुआ था. अंधश्रद्धा पर आधारित इस दर्शन ने चित्त को पंगु बना डाला था.

परंतु उपनिषदों के अवगाहन से वह पंगुता नष्ट हुई, मन प्रफुल्लित हुआ. उपनिषद् ग्रंथों के अध्ययन के सामने दुनिया का कोई भी ग्रंथ मानसिक उत्कर्ष साधने में, टिक नही सकता.''

३४ कहाँ ग्रीक, कहाँ आर्य?

ग्रीक तथा आर्यों की तुलना करते हुए, **एलफिन्स्टन** ने कहा है, ''सभी विषयों में हिंदुओं का ज्ञान अग्रगण्य था, परंतु ईश्वरविषयक ज्ञान का जो दीप आर्यों के पास है, जिसकी सहायता से आध्यात्मिक प्रदेश में उनकी गति निर्बाध रही हैं.''

''उसकी एक छोटीसी किरण भी ग्रीक विद्वत्ता के पास नही.''

३५ समानताका कारण

अल्काट ने मत प्रदर्शित किया है कि, ''वेदव्यास, कपिल, गौतम, पतंजली, कणाद, जैमिनी, पाणिनि इनके ग्रंथों के साथ प्लेटो,

अरिस्टॉटल, साक्रेटीस आदि के ग्रंथों की तुलना करनेपर लगता है कि परस्पर-साहचर्य के अभाव में इतनी समानता हो ही नहीं सकती.''

''मिस्त्र के प्राचीन लोग निश्चित रूप से भारत के ही थे. और ग्रीस-रोम के पंडितों ने इजिप्त के लोगोंसे ही ज्ञान पाया था.''

आयुर्वेद

३६ आरोग्य रक्षक मनु

मद्रास के गवर्नर **लार्ड एपथिल** ने कहा है, ''हिंदुओं के शास्त्रों में आरोग्यशाला के नियम विकसित थे. धर्मशास्त्रकार मनु आरोग्य-रक्षक के रूप मे सुविख्यात थे. विश्व में ख्यातिप्राप्त आरोग्य-रक्षकों में मनु का स्थान बहुत ऊँचा हैं.''

३७ सूक्ष्म और विस्तृत विवेचन

सर विलियम हंटर का कहना है, ''आर्य वैद्यकशास्त्र अन्य पूरक शास्त्रों से एकाकार हो चुका था. उसमे शरीर की संरचना अवयव, जोड, स्नायु, रुधिरवाहिनी, शिराएँ, शरीर के घटक (टिशूज्) आदि का विस्तृत विवेचन मिलता है. यूरोपीय वैद्यकशास्त्र उसके ऋण में रहेगा, क्योंकि कई नाम उस ने आर्य वैद्यकशास्त्र से ही लिये हैं. आर्यवैद्यक में औषधियों को बनाने के, वर्गीकरण के तथा सेवन के नियम बडे सूक्ष्म है. आहार का विचार भी बडी सूक्ष्मता से किया गया है.''

३८ आयुर्वेद के उत्कर्षका कारण

प्रा. विल्सन का मत है कि,

''भारतीयों का रोगनिदान अचूक रहता था, रोगलक्षणों की परिभाषा तथा पृथःक्करण बड़ा सूक्ष्म था. शस्त्रक्रिया का शास्त्र भी

विकसित था. निसर्ग की अनुकूलता मिलने से, औषधी वनस्पतियों की कमी थी ही नहीं, सो रोगों का निदान भी अमोघ रहता था. जिज्ञासु स्वभाव, श्रम तथा सूक्ष्म अभ्यास के कारण आयुर्वेद पनपता ही गया.''

३९ शस्त्रक्रिया

वेबर, एलफिन्स्टन तथा श्रीमती मैनिंग का मत है कि, ''आर्यो का शस्त्रक्रिया का ज्ञान प्रगल्भ था. कई बातों में तों वह आधुनिक काल से भी आगे थे.

नाक-कान आदि का प्रत्यारोपण, जो आज भी दुष्कर माना जाता है, उस समय सहजतासे किया जाता था, इस काम में आनेवाले औजार भी तीक्ष्ण, तथा सूक्ष्म रहते थे.''

४० नाक की प्लॉस्टिक सर्जरी

प्राचीन काल मे राजा नाक काटने की शिक्षा देता था. उस समय (इ. स. पूर्व १००० में भी) भारत के कुम्हांर जाति के लोग कटा हुआ नाक फिरसे शस्त्रक्रिया करके अच्छा और नया बना देते थे. (एनसायक्लोपिडीया ब्रिटानिका,नवनीत,मासिक नासिक सप्टें.१९८३पा. २१)

वीने नामक एक फ्रेंच प्रवासी ने -

''कांगडा नगर मे अनेक व्यक्तियों के कटे हुए नाक शस्त्रक्रिया से पूर्ववत किये हुये मैने देखे'' ऐसा उल्लेख किया है.

कांगडा में वंशपरंपरा से नासिका प्रत्यारोपण चिकित्सा थी. वह लोग अपनी विद्या गुप्त रखने के लिये केवल पुत्रों को पढ़ाते थे. कन्याओं के पढ़ाने से दुसरे कुल में वह विद्या जायेगी और अपनी अर्थ प्राप्ति कम होगी यह उन्हें भय था. आज वह प्राचीन परंपरा का एक ही घर कांगडा में बचा है.

सन १७९३ मद्रास के शासकीय गॅझेट में नासिका प्रत्योरोपण के शल्य चिकित्सा का उल्लेख ''ओनली वन ऑपरेशन'' ऐसा किया है. यह शस्त्रक्रिया का वर्णन ''जंटलमॅन्स मॅगेझीन'' यह लंडन के नियतकालिक में प्रकाशित हुआ है. (नवनीत मासिक नासिक पा. २२,२३ सप्टेंबर १९८३)

४१ प्लॅस्टिक सर्जरी का मूल

बारीयन कहते है कि -

''इटालियन प्लास्टिक सर्जरी मूलतः भारतीय आयुर्वेदीय शल्य-चिकित्सा है. वह व्यापार करनेवाले और नाविकों के साथ यहाँ आई.

और बाद में १९ वें शताद्बी के अनेक जर्मन सर्जनों ने भारतीय और इटली ये दोन पद्धतियों का आधार लेते हुये आधुनिक प्लास्टिक सर्जरी की प्रगति की. (नवनीत पा. २२, सप्टेंबर १९८३)

४२ शरीरका सूक्ष्म ज्ञान

वेबर ने यह भी कहा है,

''आर्यो को शरीरशास्त्र पूर्णरूपेण अवगत था. प्रत्येक अवयव के लिए भिन्न तथा सुयोग्य शब्द आयुर्वेद मे मिलता है, जो शास्त्रज्ञान के अभाव में संभव नहीं था. अमरकोश में मानव-शरीर तथा रोग के संबंध में जो शब्द मिलते है, उससे भी यहीं अनुमान निकलता है.''

४३ वैद्यकशास्त्र के असंख्य ग्रंथ

प्रा. विल्सन कहते हैं,

''संस्कृत में वैद्यकशास्त्र पर बड़ी संख्या में ग्रंथ मिलते हैं. कइयों का अरबी में अनुवाद भी हो चुका हैं. इन अनूदित ग्रंथों में

शस्त्रक्रिया सहित कई शाखाओं की चर्चा है. सूक्ष्म निरीक्षण तथा औषधयोजना के सप्रमाण, यथाशास्त्र तरीके इन में दिये गये हैं.'' (भा. श्रे.)

४४ आयुर्वेद : परदेशगमन और स्वदेशागमन

मद्रास के गवर्नर **लार्ड आप्थिल** ने लिखा है, की ''प्राचीन आर्यावर्त से वैद्यकशास्त्र का ज्ञान मुस्लिम लोग अपने देश ले गये. उन्होंने जब भारत पर विजय पायी, तब वे अपने साथ फिर यहाँ ले आये.

बीचमें कई सदियों तक यह ज्ञान भारत से लुप्त-सा हो चुका था, परंतु मुसलमानों के आगमन के साथ उसे फिरसे स्वदेश मिला.''(भा. श्रे.).

४५ स्वयं का गुरुत्व भारत भूल गया

लॉर्ड आप्थिल ने अन्यत्र कहा है,

''जब यूरोप जंगली अवस्था में था, तब भारत में **उपचारात्मक** एवं **प्रतिरोधात्मक,** दोनों प्रकारकी औषधियां प्रचलित थी.

सत्रहवीं शताब्दी तक यूरोप के वैद्य अरबी ग्रंथों से वैद्यकशास्त्र पढ़ते थे. अरबी लोग स्वयं भारत से उन ग्रंथो को अरबस्थान ले गये थे.

सुधार का प्रवाह पूर्व से पश्चिम की ओर चला था.

परंतु कितना आश्चर्य है कि स्वयं आर्यावर्त में उसका स्मरण तक नहीं बचा.'' भा. श्रे.

४६ शिष्य गुरु को पढ़ाता

लॉर्ड ऑप्थिल मद्रास गव्हर्नर -

''बीच में अवनति का जो कालखण्ड रहा, उसमें भारत के कई

लोकहितकारी तत्त्वशास्त्र मृतप्राय हुए. फलस्वरूप, भारतवासियों के लिए वे अपरिचितसे हो गये.''

''उनकी धारणा हुई कि ब्रिटिशों ने अपने शासनकाल में वे शास्त्र भारत में प्रतिष्ठापित किये. परंतु वस्तुस्थिति इसके ठीक विपरीत है. काल की अगम्य लीलाओं में से एक यह भी है कि,

''आज शिष्य पर, गुरु को पढ़ाने की नौबत आयी है.''

४७ मानस व्यथित होता है

लॉर्ड ऑप्थिल मद्रास गव्हर्नर -

''इतिहास और प्राच्यविद्यासंशोधक के अथक परिश्रम से प्राचीन भारत का ज्ञान कितना संमृद्ध था यह ज्ञात होता है.-

किंतु अवनति की दुर्दशा में कितनी महान हानि होती है और सामर्थ्य संपन्न देश की कितनी दैन्यावस्था बनती है, यह सिद्धान्त की सत्यता भारत के बारे मे प्रतीत होती है. और मानस व्यथित होता है.''

इस सृष्टी मे नया ऐसा कुछ नही. आज जो है वह प्राचीन काल में भी था. केवल स्वरूप भिन्न होगा. थोडे लोगों में सीमित होगा, इतनीही भिन्नता है. सर्व रूपेण नया ऐसा सृष्टि मे कहीं भी मिलेगा नहीं.

यह सार्वत्रिक सत्यताका पुनर्प्रत्यय प्राचीन आयुर्वेदीय रोगप्रतिबंधक पद्धति में गोचर होता हैं.''

लिपी और गणित

४८ लिपी और दशांश पद्धति भारत से

जर्मन विद्वान् श्लेजेल का कथन है,

१. ''मनुष्य ने आजतक जितने भी आविष्कार किये, उन में **'लिपी'** का स्थान प्रथम है,

२. और दूसरा क्रमांक आयेगा गणित के **दशांश पद्धति** का. यह सर्वमान्य है कि ये दोनों आविष्कार हिंदूओं के है.''

४९ गणित से विश्व उपकृत

प्रा. मैकडोनल ने अभिप्राय दिया है,

''विज्ञान के क्षेत्र में भी यूरोप भारत का ऋणी रहेगा. अंकपद्धति का आविष्कार करके आर्यो ने विश्व को उपकृत किया है. दशमान पद्धति भी भारतीयों की देन है. न केवल गणित पर, अपितु पूरे वैश्विक सुधार एवं संस्कृति पर उसका प्रभाव है.''

५० शून्यकी खोज

''शून्य की देन'' सारे ज्ञान विज्ञान की मूल है और यह खोज भारत का विश्व को कभी भी कम न होनेवाला ज्ञानदान हैं.

५१ बीजगणित

जे. मॅकडोनल-

''आठवी-नवीं शताब्दि में अरबों ने ये शास्त्र भारत से पढ़े. बाद में अरबों के साथही ये शास्त्र पाश्चात्य राष्ट्रों में प्रविष्ट हुए. यही कारण है कि बीजगणित को अरबी नाम (अज्बरा) प्राप्त हुआ, परंतु उसकी वास्तविक उत्पत्ति भारत ही में है.''

५२ पांच हजार वर्ष पूर्व ज्योतिर्वेध

बेली आदि सुविख्यात ज्योतिर्विदों के मत में -

''भारत में ज्यामिति की सहायता से निर्मित ज्योतिर्विषयक टेबल विद्यमान थे, परंतु उनकें निर्मितिकाल का अनुमान नहीं लगा सकते. अति प्राचीन काल में (लगभग ३००० वर्ष ईसापूर्व) प्रत्यक्ष बोध लेकर उनका निर्माण किया गया होगा.''

५३ त्रिकोण - भूमिति

एलफिन्स्टन के उद्गार हैं, कि,

''त्रिकोण का क्षेत्रफल उसकी भुजाओं में सिद्ध किया जा सकता है, यह बात हिंदुओं को पूर्णरूपेण अवगत थी. परंतु क्लैबियस को उसकी प्रसिद्धि का श्रेय मिला. इतनाही नहीं किंतु त्रिज्या तथा परिधि का परस्परप्रमाण मापने की पुरानी हिंदु पद्धति आज की पद्धति से पूर्णरूपेण समान है.''

''जो बातें यूरोपीयों को गत शताब्दी तक अवगत नहीं थी, उनका पूरा ज्ञान हिंदुओं को हजारों वर्ष पूर्व था. उनकी श्रेष्ठता प्रमाणित करने को और क्या चाहिए?'' (भा. श्रे.)

५४ बीज गणित का मनोरंजक इतिहास

'' $AX^2 + B$ इस पूर्ण वर्गात्मक संख्या में X (क्ष) का मूल्य क्या रहेगा ?'' इस प्रश्न का मनोरंजक इतिहास 'एडिनबरो रिव्यू' पत्रिका ने उद्घाटित किया था.

पहले **डाईफैण्टस** ने यह प्रश्न हल करने का प्रयास किया. बाद में सत्रहवीं शती में Fercmat ने, उसमें कुछ परिवर्तन करके उसे अंग्रेजी बीजगणिततज्ञ के पास भेजा. अंत मे Euler (यूलर) ने उसका संतोषजनक उत्तर दिया जरूर, परंतु पाया गया कि ''यूलर तथा भास्कराचार्य दोनों की पद्धतियाँ पूरी तरह समान है.

उसी पत्रिका ने अन्यत्र, लिखा है,

''भास्कराचार्यजी ने जो उत्तर बताया, वही सन १६५७ मे **लॉर्ड ब्राँकर** ने समझाया. सन १७६७ में उसी प्रश्न का सरलतर तरीका डी लाग्रेज ने बताया. वह **''ब्रह्मगुप्त''** द्वारा लिखित तरीके से बिलकुल भिन्न नहीं.''

५५ बीजगणित भारतीय और ग्रीक

एलफिन्स्टन ने कहा हैं कि,

''हिंदू तथा ग्रीक बीजगणित में जो भेद है, वह केवल पद्धति में है. नूतन आविष्कार ग्रीस ने कुछ न दिया. सन १७२४ ई. तक बीजगणित की हिंदू पद्धति का ज्ञान विश्व को नहीं था. यह पद्धति **बाचेट डी मेझेरिक** ने यूरोप में प्रसिद्ध की और बाद में **यूलर**ने भी उसी का स्वीकार किया.''

५६ शंकराचार्यजी का वैदिक गणित

जगन्नाथपुरी के शंकराचार्य 'श्री भारतीकृष्णतीर्थजीने वैदिक गणित के १६ सूत्र (फार्मूले) तैयार किये है. उल्लेखनीय है कि इंग्लैड अमेरिका में उनका प्रसार हो रहा है. बड़े-बड़े कूट गणित के प्रश्न भी हल करने में ये सूत्र बहुत सहायक है. (विश्व पुनर्निर्माण संघ, तेलंखेडी, नागपुर १९५५)

व्याकरण

५७ व्यंजन और स्वरों का भेद

वेदों परस्वरबोधक 'प्रतिशाख्य शास्त्र'' का निर्माण हुआ है.

प्रो. विल्सन प्रतिशाख्यशास्त्र के विषय में कहते है कि,

''विश्व में के किसी भी राष्ट्र के साहित्य में मानवीय भाषाशास्त्र के स्वरूप लक्षणों का इतना सूक्ष्म, व्यापक, गहरा और विस्तार से विवेचन नहीं है.

(१) स्वर शास्त्र (२) स्वर/व्यंजनो का वर्गीकरण

(३) शब्द की व्युत्पत्ति (४) शब्दों की जातियां

उनका परस्पर साम्य / भेद; आदि अनेक विषयोंमें भारतीय व्याकरण की विशेषताएं है. (भा. श्रे.१३५)

५८ युरोप २५०० साल पिछे

डॉ. थॉमसन आगरा कॉलेज के मुख्य अध्यापक तथा प्रख्यात शब्दव्युत्पत्ति के शास्त्रज्ञ कहते है कि, ''संस्कृत भाषा की **''व्यंजन व्यवस्था''** अपूर्व है. मानवीय बुद्धि का एक अद्वितीय चिन्ह है. इस भाषाशास्त्रीय वैज्ञानिक उन्नति के विषय में युरोप २५०० साल पिछे है. वैसाही सर्व प्रकारकी ध्वनि लिखित करने के लिये अंग्रेजी में अल्फाबेट्स ही नहीं है.

रेव्हरंड वॉर्ड - ''आर्यो के शब्द के व्युपत्ति शास्त्र ने सारे प्राचीन और अर्वाचीन देशोंपर मात दी है। (भा. श्रे. १३६)

५९ महर्षि पाणिनी निर्मित भव्य प्रासाद

प्रो. वेबर का कहना है कि,

''पाणिनी के व्याकरण के ग्रंथ खोलतेही ऐसी अनुभूति होती है कि हमने एक भव्य दिव्य प्रासाद में प्रवेश किया है.

वह भव्य मंदिर के द्वार के तोरण पर उसके कर्ता का नामोल्लेख देखते ही मन आनंदाश्चर्य से पुलकित हो जाता है. भाषासृष्टि के सारे चमत्कृतिपूर्ण प्रसंगों का यथायोग्य तथा समर्पक स्पष्टीकरणसे बुद्धि विस्मित हो जाती है.

पाणिनी जैसे महान् पुरुष की आश्चर्यजनक कल्पकबुद्धि और साधन सामुग्री का सूक्ष्म और परिपूर्ण आकलन का पूर्ण विश्वास होता है. और उनके बुद्धिप्रकर्ष का मनपर आदरयुक्त बहोत बड़ा बोझ आ जाता है. (भा. श्रे. १३६)

६० प्रयत्न और कल्पनाशक्ति की परमसीमा

प्रो. सर हंटर का कहना है कि -

(१)वाक्यो की पूर्ण अर्थवाहिता,

(२)शब्दों में धातुपृथक्करण की परिपूर्णता,
(३)शब्दनिर्मिती के लिये उसके घटक और नियमो की निर्दोषता.

यह तीनों गुणों में सारे विश्व के ग्रंथो में पाणिनीय ग्रंथ अति श्रेष्ठ हैं. कतिपय स्थानों की दुर्बोधता हैं. वह छोड दी गयी तों बीजगणित के समान परिभाषामें सारा व्याकरण लिखा है. विचारों का मार्मिक संक्षेप जो हैं वह तो केवल निरूपम है.

मानवी प्रयत्न और कल्पकता से कितना उज्वल कार्य करा सकते हैं उसका प्रत्यंतर - संस्कृत भाषा में तार्किकतासे जो समन्वय किया गया है - उससे आता है. (भा. श्रे. १३२,३७)

६१ आर्यो का अधिक्षेप करने का साहस नहीं

''व्याकरणशास्त्र का पृथक्करण और मानवी भाषाशास्त्र के तत्त्वों का अभूतपूर्व विवेचन'' इन दोनों विषयों में प्राचीन आर्यो को चुनौती देने का साहस किसी भी अर्वाचीन विद्वान की बुद्धि से परे है. - **हंटर और मॅक्समूलर** (भा. श्रे. १३७)

६२ कोशग्रंथ

रेव्हरंड वॉर्ड - ''प्राचीन काल मे संस्कृत भाषा कितनी परिणत अवस्था में पहुंची थी यह कोश ग्रंथोंसे स्पष्ट रूपसे अनुमानित होता है. और इसके लिये हिंदूस्थान कें विद्वान लोग उच्च सन्मान के लिये अतीव पात्र है.'' (भा. श्रे. १३८)

६३ रामायण और ग्रीक महाकाव्योंकी तुलना

मोनियर विलियम यह आंग्ल पंडित ने कहा है कि-

''ग्रीक महाकाव्यों को रामायण और महाभारत इनके साथ बैठाना कभी संभव नहीं है. इनकी तुलना करना याने नगाधिराज हिमालय के बर्फिले प्रदेश में आरंभ होनेवाली, छोटी बड़ी नद नदियों

से विशाल बनी हुयी, कई जगह घुटनाभर किंतु विशाल क्षेत्र में बहनेवाली कहीं कहीं भिन्न विभिन्न दिशाओं को जाती हुयी गहरे प्रवाहों का रूप लेने वाली गंगा-जमुना सरीखी महानदियों से अँटिका और येसाली यह यूरोपियन प्रदेशकी छोटी छोटी नदियों को समान समझना हैं.

अति विशुद्ध भावनाओं का पूर्ण परिचय देनेवाले विश्व के किसी भी क्षेत्र में निर्माण हुये सौंदर्यपूर्ण और मनको आल्हाद देनेवाले काव्यों में रामायण की योग्यता अनुपम है. निसर्ग से ही हरेभरे और विशाल उपवन की उपमा रामायण को ही दी जाय तों अनुचित नहीं होगा. मधुर रसपूर्ण और सुंदर उपदेशपर श्लोक ही शीतल जलके तालाब हैं. परस्पर सुसंगति पूर्ण उदात्त कथाभाग यहीं वृक्षोंका घना वन है. ऐसी उपमाही सार्थक होगी !

और देखिये, राम का चरित्र कितना उत्तम चित्रित किया गया है. राम के चरित्र में पहलेसे आखिरतक राम का निस्वार्थी वर्तन दृष्टिगोचर होता है. इसी के कारण ऐसा लगता है कि इस रामायण को मानवीय जीवन कहना कठिन है. यह परमेश्वरीय अंशही हो सकता है, ऐसी मनोधारणा बन जाती है.

राम के अतिमानुष कृत्यों से कभी कभी मनकी अवस्था भावविभोर हो जाती है. किंतु ऐसे प्रसंग किंचित् काल ही रह पाते है. आरंभ में तों पवित्रता से पूर्ण और सद्गुणसंपन्न मानवीय भाव के अतिरिक्त कवि ने लिखाही नहीं हैं.

आज के समय में राम का प्रेम शौर्य औदार्य निर्लोभता, पितृ आज्ञाकारी व्यवहार, निर्मल पत्नीप्रेम, बंधुओंसे प्रेम और क्रोधमय विचारों का पूर्ण अभाव आदि गुणों की जितनी तारीफ की जाय वो कम है.

अपनी सौतेली माता कैकयी के क्रोधाग्नि में राम की बलि चढाई जाती है तों राम के मुखसे एक भी विरोधी शब्द निकलता नहीं.

जब पिता दशरथ उसको वनमें जाने का संकेत करते हैं, तो भी राम में मनोमालिन्य का भाव उठता नहीं. अपने पिता के प्रतिज्ञाभंग के पाप से, स्वयं के सुखों को त्याग देना यही राम औचित्यपूर्ण मानता है.

सीता के विषय मे तो शब्द ही अधुरे है. वह केवल गृहलक्ष्मी है, सारे सद्‌गुणोंने साकार होकर सीता का रूप लिया है, ऐसाही लगता है.''(भा.श्रे. १४२)

६४ महाभारत की महत्ता

अमेरिकी पंडित **डॉ. हँसलर** कहते है कि,

''देवी स्फूर्ति से भरे हुये प्राचीन आर्यावर्त के अत्यंत मनस्वी महात्माओं ने महाभारत का निर्माण किया है. ऐसा विशाल और परिपूर्ण ग्रंथ मैंने दुसरा देखाही नहीं.

मेरे पूर्व जीवन के अनुभव से मैं निःसंकोच कहता हूं कि इस ग्रंथ ने मुझे इतना आकर्षित किया है कि मैं उसके लिये पूर्ण रूपसे संभ्रमित हो गया हूं.

इस ग्रंथ का निरंतर अभ्यास करके उसमें से १००० के उपर सुभाषितों को संग्रहित करके मैंने मेरे भावी जीवन के लिये अध्ययन की रूपरेखा निश्चित कर ली हैं.

महाभारत याने एक अभिनव सृष्टि है, ऐसा मेरा निश्चय हो गया है. इसमें सत्य पक्ष के बारे में लगाव, अनेक विषयों का ज्ञान, चातुर्य और सत्य इत्यादि अनेक गुणसमुच्चय का वर्णन पढ़ते ही मैं उसमें भावविभोर हो जाता हूं.

इतने से ही उसकी पूर्ति नहीं होती. मेरे विचार से तो परमात्मा और जगत् की उत्पत्ति के विषय में मैने जो सिद्धान्त अनुमित किये थे वह सिद्धान्त ही महाभारत में सुचारू रूपसे और स्पष्ट रीति से विवेचित किये है. यह देखकर तों इस ग्रंथ के लिये मेरा आदर बहुतही बढ़ गया. इसकी महत्ता कितनी बखान करना यह मुझे सूझता ही नहीं. (भा.श्रे. १४३)

६५ विश्व कल्याणकारी महाभारत

प्रा. जेरेमिआकर्टीन -

पी. सी. रॉय बहुत प्रयत्नपूर्वक महाभारत का अंग्रेजी में अनुवाद का कार्य कर रहे थे. उन्हें अमेरिका के मानव वंश विशेषज्ञ प्रा. जेरेमिआकर्टीन का पत्र आया कि, ''आपके द्वारा अनूदित महाभारत के २४ खंड मैंने आरंभसे लक्ष्यपूर्वक पढ़ लिये है. मेरी ऐसी धारणा हो गयी है कि, ''इस ग्रंथ से और श्रेष्ठ ग्रंथ कोई नही हैं. इस ग्रंथ के अध्ययन से मुझको जो आनंद हुआ हैं उतना जीवनभर में और किसी ग्रंथ से नहीं मिला.

आर्यो के श्रेष्ठ बुद्धिमत्ता और सच्चे शील के संबंध मे महाभारत के अनुशीलन से सारे विश्व के लोगों की आंखे खुल जाएगी.

आप जो कार्य कर रहें हैं, उसीसे केवल हिंदूस्थान का कल्याण होगा यहीं नहीं किंतु सब आर्यवंशों का कल्याण होगा. इसमें संदेह नहीं.

महाभारत एक बहुत बड़ी खदान हैं. उसमें जो संपत्ति है उसका अंदाजा विश्व को नहीं हैं. इसीमेसे 'विचाररूपी रत्न' जैसे जैसे बाहर आयेंगे वैसे वैसे महाभारत का महत्व लोगोंको समझने मेंआने लगेगा.

इस ग्रंथ से आर्योका इतिहास समझने की जिनको तीव्र लालसा

है उन सबका समाधान निश्चितरूपसे होगा. वैसेही दीन मानव और असीम शक्तिमान् परमेश्वर इनमे क्या नाता है; इसका भी ज्ञान इस महान ग्रंथ से होना निश्चित है.(भा.श्रे.१४४)

६६ महर्षि व्यास और कवि होमर

१८८६ के सितम्बर के अंक मे **सानूहिलेर बार्थोलेमी** नाम का एक फ्रेंच मासिक संपादक कहता है कि, ''अंदाजन सौ साल पूर्व **विलकिन्स** नाम के गृहस्थ ने महाभारतसे कुछ सुभाषितों को निकालकर सामने रखे और भगवद्गीता के संदर्भ में इस महान ग्रंथका परिचय करवा दिया. इस ग्रंथ की भव्यता देखकर सारा पाश्चात्य जगत् विस्मित हो गया.''कवि होमर यह महाभारतकार व्यासजी के सामने बहुत ही छोटा है'' ऐसा सब लोग मानने लगे.और आर्यावर्त ग्रीस से श्रेष्ठ है ऐसा सभीं का निश्चय हुआ.(भा.श्रे.१४४)

६७. प्लेटोसे व्यासजी की महत्ता

प्रो. हिरेन कहते है - भारतखंड मे विद्वानों का तत्वज्ञान सामन्य जनसमूह में पूरा घुलामिला है.

१)ईश्वर का एकमेवाद्वितीयत्व,२)सृष्टि-कर्तृत्व,३)आत्माका अमृतत्व,४)जीवों की कर्मबद्धता. यह भारतीय तत्त्वज्ञान के चार मूलतत्त्व सामान्य लोगों के धर्म के सहज आधार बन गये हैं.

मोझेसने पुनर्जन्म के तत्त्वका उल्लेख तक नहीं किया, यदि किया होगा तों बड़ा संदिग्ध और अस्पष्ट किया हैं.

वैसेही ईश्वरका एकत्व और सर्वशक्तिमत्व, अनेक देवतावादी ग्रीक और रोमन की सामान्य जनता को या दैवी भिश्रेइक धर्मशास्त्रकारों को भी अज्ञात था.

वह ईश्वरीय तत्त्व को गंगा किनारे के ऋषियों ने भरतखंड के

सामान्य लोगों को भी प्राचीन काल में ही अवगत कराया था.

इसके अलावा पापाचरण के लिये भारत में बहुतहि कठोर शासन था.यह सिद्धान्त लोगों के मानस में दृढ करके उनकी पापभीरूता नित्य जागृत रखने के लिये व्यासजीने प्लेटो पर भी विजय पाया है.''

६८ सभी ज्ञानशाखाओं में संपन्नता

प्रो. हिरेन ऐसा अभिप्राय देते है कि, -

''संस्कृत साहित्य शास्त्रीय परिभाषा में तथा गद्य और काव्य में भी बहुत संपन्न है.''

६९ अध्ययन के लिए आयु बहुत कम

सर विल्यम जोन्स - ''भारतीय वाङ्मय के एक-दो शाखांओं का संपूर्ण अध्ययन करने लिये भी एक मानवीय जीवन का काल बहुतही कम है.''

प्रो.मॅक्समूलर -''जिनकी पाण्डुलिपियाँ हैं, ऐसे संस्कृत भाषा में भिन्नभिन्न विषयों पर कमसे कम दस हजार ग्रंथ निश्चितही उपलब्ध है.''

''ग्रीक और रोम यह दोनो देशों से सब प्राचीन वाङ्मय इकट्ठा किया तो भी इतनी संख्या नहीं होगी'', ऐसा **मॅक्समूलर**ने हिसाब दिया हैं.(इंडिया व्हॉट कॅन इट टीच अस? पृ.८४)

(आज देखा जाय तो जर्मनी और इंग्लैंड में ३ लाख के उपर ग्रंथों की पांडुलिपियाँ ग्रंथालयों में सुरक्षित है और वहां मायक्रोफिल्मिंग होकर उनका अध्ययन भी चालू है. ईसा वर्ष १९७२)

७० भारतीय हार माननेवाले नहीं

रेव्हरंड वॉर्ड - ''भारत में प्रत्येक शास्त्रका अध्ययन चालू था, ऐसा उनके उपलब्ध ग्रंथों से मालूम पडता हैं. उनके ग्रंथों की विवेचन की शैली देखी जाय तों विद्वत्तामें विश्व के कोईभी लोगोंसे भारतीय

हार मानने वाले नहीं है. अनुभव आता है. उनके तत्त्वज्ञानविषयक वाङ्मय और धर्मशास्त्रों का जैसे जैसे परिशीलन हो रहा हैं वैसे वैसे भारतीयों के विद्वत्ता तथा चातुर्य (विसडम) का अनुभव आ रहा है.'' *(अँटिक्विटी ऑफ हिंदु-इझ्म खंड ४, भा. श्रे. १२९)*

७१ मानवीय बुद्धि की पूर्णता

मिसेस मॅनिंग - ''मानवीय मानस और बुद्धि यह दोनों जहां तक पहुंच सकते है वहां तक भारतीयों के मन और बुद्धि पहुंच गयी है, यह निश्चित है.'' *(एंशंट अँड मेडिएव्हज इंडिया खंड२, भाश्रेपा. १४८)*

७२ सूरज और जुगनूं

श्लेजेल - ''हिंदूओं के विचारधारा में गहरा और तेजस्वी आत्मविश्वास, गरिमा और तार्किक विशुद्धता बहुतही हैं.

ग्रीक समाज को उनके ज्ञान के बारे में जो अतिरिक्त अभिमान हैं वह हिंदूओं के ज्ञानवत्ता के सामने बहुत फिका हैं. इन दोनों को 'सूरज के सामने जुगनू' यही उपमा शोभा देती है.''

७३ जगद्गुरु भारत

मॅक्समूलर का कहना है - ''भारतीय राष्ट्र में सारी जगह शांतता है. धनधान्य की परिपूर्णता है. कोई कोई बड़े परिवार तो बहुतही संपन्न है.

सब लोगों को विद्या, और कलाओं का ज्ञान देनेवाले विद्यालयों और विद्यापीठों की सारे हिंदूस्तानमें भरमार है.

ऐसे स्थिति में पेट भरने के लिये रातदिन काम करनेवाले समाज में से भी थोडे लोग विद्या और कलाओंके लिये समय निकालते हैं और उन्हीं में से कुछ लोग उसीमे जीवन समर्पण किये हुए दिखाई देते हैं.

ऐसे अल्प लोगोंसे ही तत्त्वज्ञानी और साधारण समाज के मानस को आल्हाद और शांति प्रदान करनेवाला तत्त्वज्ञान निर्माण होता है. यह नियम यदि हिंदूस्थान को लगाया तों वह पूर्णरूपेण सच है ऐसाही दिखता है. और यहां के विश्वविख्यात तत्त्वज्ञानियों की संख्या गिनी जाय तों, उपरोक्त नियम के अनुसार -

हिंदूस्तान सारे विश्व के गुरुस्थान पर ही विराजमान और शोभायमान होगा इसमें संदेह नही.'' (भा. श्रे. १७२)

७४ समानताका कारण

अल्काट ने मत प्रदर्शित किया है कि, ''वेदव्यास, कपिल, गौतम, पतंजली, कणाद, जैमिनी, पाणिनि आदि के ग्रंथों के साथ प्लेटो, अरिस्टॉटल, साक्रेटीस आदि पाश्चात्य विद्वानों के ग्रंथों की तुलना करनेपर लगता है कि परस्पर-साहचर्य के अभाव में इतनी समानता नहीं हो सकती. मिस्त्र के प्राचीन लोग निश्चित रूप से भारत के ही थे, और ग्रीस-रोम के पंडितों ने मिस्त्र के लोगोंसे ही ज्ञान पाया था.''

७५ निरक्षर किंतु उच्च संस्कारसंपन्न

बिसवे शतक के ८ वे दशक में एक युरोपियन अभ्यासक ग्रामीण लोकसाहित्यका अभ्यास करने के लिए पुणे के एक देहात में लोगोंके साथ रहे. उन्होंने ४-६ महिने अध्ययन किया और जाने के समय उन्होंने भारत के देहाती समाज के बारे में जो बोला वह महत्वपूर्ण था. उन्होंने कहा -

''इल्लिटरेट बट हायली एज्युकेटेड''.

''भारत का ग्रामीण समाज अक्षरशत्रु दिखता है, उसे लिखना पढ़ना नहीं आता, किंतु अगर देखा जाए तो वह पढ़ा लिखा है. संस्कारी है.''

प्राचीन भारत के समाज को सुसंस्कृत करने की शिक्षणपद्धती विलक्षण है. रामायण, महाभारत, कीर्तन, प्रवचन आदि इत्यादि कार्यक्रमोंने समाजके सभी स्थरों को सत्त्वसंपन्न रखा. मनोरंजनके माध्यम से नीती - धर्म - वेदान्त - भक्ती आदि से समाज को शिक्षा दी. इसलिए सत्य की राह और एक-दुसरे को मदत करने की प्रवृत्ति और दया इन गुणोंको समाजने आत्मसात किया. वह भारतीयोंके ''जीन्स''में आ गये. इस संस्कार का अनुभव विदेशी अभ्यासकोंको आया. और उसमेंका मर्म उन्होंने पहचाना. यही अपने भारतीय संस्कृति की नित्यनूतनता है.

इस प्रकार यूरपीयों ने भारतीय श्रेष्ठत्व की जो सराहना की हैं वह हमने संक्षेप में देखी. इस प्रकारसे हम लोग पाश्चात्य विद्वानों के स्तुतिसुमनों के वर्षाव से आनंदित होते हैं इसमे संदेह नही. किंतु भारत के प्राचीन 'उत्कर्षबोधक इतिहास' का पाश्चात्योंने जों सकारात्मक अध्ययन किया उसी प्रकार हमें भी हमारे पूर्वजों का इतिहास आदरसे, श्रद्धासे और मुख्यतः समन्वय रीति से समझ लेना चाहिए तो ही इतिहासलेखनका संस्कार प्रदान करनेवाला शैक्षणिक उद्दिष्ट पुरा हो सकेगा.

* * *

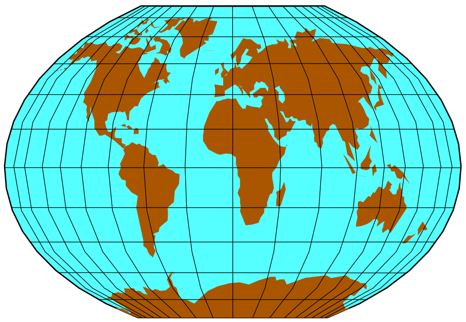

३

ब्रिटिशों का षड्यंत्र

इतिहास-विकृति

श्रीगुलाबरावमहाराजके इतिहासविचारके उपलक्ष में उपलब्ध प्रमाण-संदर्भ

...

ब्रिटिशों द्वारा इतिहास-विकृति का षडयंत्र

१. विषका बीज : बोडन ट्रस्ट
२. कारस्थानी : मैकाले
३. चतुर : मैक्समूलर

१. बोडन ट्रस्ट, इंग्लैंड

तीनसों साल पूर्व भारत की पुण्यभूमिपर अंग्रेजों का आगमन हुआ और बादमें पूरे देश को निगल जाने की उन्होंने योजना बनायी. इस दिशा में किये गये प्रयासों के अंतर्गत, १५ अगस्त इ. स. १८११ के दिन, इंग्लैंड के एक धनवान किंतु पुत्रहीन कर्नल बोडन ने ऑक्सफर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत अध्यापन का पीठ स्थापित किया.

इस पीठ के शिक्षाक्रम का ध्येय था- संस्कृत धर्मग्रंथों का अध्ययन तथा विकृतिकरण करके हिंदुओं को ईसाई बनाना !

मोनियर विलियम्स ने अपने 'संस्कृत - अंग्रेजी शब्दकोश' की प्रथमावृत्ति की प्रस्तावना में यह उद्देश्य स्पष्ट रूप से उद्धृत किया है.

२. मैकाले की योजना

सन १८३४ में लार्ड टी. बी. मैकाले भारत में शिक्षाप्रमुख बने. उन्होंने पारंपरिक चलती आई संस्कृत पाठशालाओं के अनुदान बंद करके

कॉलेज के तथाकथित संस्कृत अध्ययन को प्रोत्साहित किया. अपने पिता को भेजे हुए पत्र में (दि. १२-१०-१८३६) उन्होंने लिखा है -

''मैंने बनायी पद्धति से यहाँ शिक्षाक्रम चलता रहा, तो आगामी तीस वर्षों में
बंगाल में एक भी हिंदू नही बचेगा.
सारे ईसाई बन जायेंगे.
या फिर केवल नाममात्र पॉलिसी के लिए हिंदु (पॉलिटिकल हिंदु) बने रहेंगे. धर्म या वेदशास्त्रों पर उनका विश्वास कतिपय नही रहेगा.
स्पष्ट रूप से हिंदु धर्म में हस्तक्षेप न करते हुए,
बाह्यतः उनकी धार्मिक स्वतंत्रता को कायम रखते हुए, हमारा उद्देश्य सफल होगा.''

पं. नेहरू द्वारा भारतीय संविधान में बोए हुए धर्मनिरपेक्षता याने झूठे 'सेक्युलरिझम्' नाम के विषवृक्ष के बीज, और आज के 'धर्मश्रद्धाहीन हिंदुत्व' के बीज, मैकाले के इस पत्र में स्पष्ट रूपसे दृष्टि गोचर होते है!

३ - मैक्समूलर का कुकर्म

बादमें, सन १८५४ में मैकाले की भेंट मैक्समूलर से हुई. मेकॉले निवृत्त होकर लंदनमें वापस आया था. २८ सालके युवा, वेदोंमे पीएच. डी. प्राप्त, मैक्समूलर को उसने ईसाई धर्म के प्रसार के लिए वेदों का अनुवाद करने को प्रवृत्त किया. इस प्रसंग के वर्णन में मैक्समूलर कहता है,

''मैंने डेढ घंटा मैकालेसे चर्चा की. मन मानता नही था किंतु ईसाई धर्म के प्रसार के लिए आखिरमें मैंने बोडन ट्रस्ट से वेदों का अनुवादकार्य स्वीकार कर लिया, लेकिन कमरेसे बाहर आते समय मेरा मन बहुत कुंठित और दुखी था.''

इस 'धर्मपरिवर्तनके पवित्र' कार्य के लिए ब्रिटिश शासन, ईस्ट इंडिया कंपनी तथा बोडन ट्रस्ट लाखों रुपयों का व्यय करने के लिए सहर्ष तैयार हुए.

हिंदुओं की वेदोंपर की श्रद्धा हटाने के इस 'घृणित' कार्य को मैकस्मूलर ने सन १८५५ में प्रारंभ किया. सन १९०० तक, वेदों का अनुवाद पुरा किया.

उसमें संस्कृत तथा वैदिक वाङ्मय की उसने सच्चे मनसे तारीफ भी की है, और यह भी सच है कि उसी के कारण विश्वभर में संस्कृत के अध्ययन को गति मिली. तुलनात्मक अध्ययन करनेवाले विद्वान् आज भी स्वयं को मैक्समूलर के ऋणी हैं.

४. मैक्समूलर का आंतरिक हेतु

परंतु इस कार्य के पीछे मैक्समूलर का आंतरिक हेतु, जो उसके पत्रों में से दिखाई पडता है, वास्तव में भयानक है. उसका कार्य परिश्रमजन्य तथा अध्ययनपूर्ण होते हुए भी, भारतीय संस्कृति के लिए बहुतही विघातक सिद्ध हुआ. सन १९०२ में उनकी पत्नी ने उसके चरित्र और पत्रों का प्रकाशन किया. उदाहरण के तौरपर पत्रोंसे कुछ अंश देखने लायक हैं. (लाइफ अँड लेटर्स ऑफ फ्रेड्रिक मॅक्समूलर, २ खंड, इस़.१९०२)

५. वेदोंको उखाड फेंकना

मैक्समूलर का पत्नी को पत्र -

''तीन हजार वर्षो से हिंदु हृदयों पर एकाधिकार रखनेवाले वेदोंको यदि समूल उखाड फेंकना हो, तो उसका एकमात्र उपाय हे वेदोंको अनुवाद करना.'' (दिनांक ९-१२-१८६६)

६. बायबल सर्वश्रेष्ठ : वेद निकृष्टतम

मैक्समूलर का पुत्र को पत्र -

''समुचे विश्व के धर्मों में १ - प्रथम क्रमांक 'न्यू टेस्टामेंट बायबल' का है. २- नीति दृष्टि से द्वितीय क्रम 'कुराण' का, ३- बादमे ओल्ड टेस्टामेंट बायबल, ४- बौद्धों का त्रिपिटिक, ५ - ते ओते, ६ - कन्फ्यूशस, **बाद में ७- बेद** और आखिर में ८ - अवेस्ता.

''विश्व के सब धर्मग्रंथों में प्रलय वर्णन आता हैं. वेदों में जलप्रलय का केवल वर्णन है किंतु ओल्ड टैस्टेमेंट में तों प्रलय का नैतिक अर्थ भी समझाया है. यही सही शिक्षा है.'
इसीलिये वेद का स्तर निचला हो गया है.''

७ हिंदुओं के प्राचीन धर्मका पतन

मैक्समूलर का ड्यूक आफ आर्गाइल को पत्र -

दि. १६-१२-१८६८.

''भारत के प्राचीन धर्म का पतन हो ही चुका है. फिर भी अभीतक भारत में ईसाई धर्म नही फैला, तो इसमें मेरा क्या दोष?'' (बल्कि शासन और मिशनरियों का दोष है !)

८. ख्रिश्चन बनों

मैक्समूलर का श्री. एन. के. मजूमदार, ब्राह्मो समाजिस्ट को पत्र -

''मैं हिंदुधर्म को शुद्ध बनाकर ईसाईयत के पास लाने का प्रयास कर रहा हूँ. आप या केशवचंद्र सरीखे लोग प्रकट तौर पर ईसाईयत का स्वीकार क्यों नहीं करते? जैसा जर्मन चर्च हैं, अंग्रेज चर्च है, वैसा हिंदु चर्च होगा. नदीपर पूल तैयार हैं केवल तुम लोगों को चलकर आना बाकी हैं पूल के उसपार लोग स्वागत के लिए आपकी राह देख रहे हैं''

(दि. ३०-१०-१८९९. मृत्यू के पूर्व आखिरी वर्ष)

किंतु भारत के सौभाग्य से रामकृष्ण परमहंस और स्वामी

विवेकानंदजी के प्रभाव के कारण मैक्समूलर की मनोकामना अधूरी रह गयी.

९. स्वामी दयानंदजी पर छींटे

मैक्समूलर का बैरामजी मलबारी को पत्र - दि. २८-१-१८८२

''दयानंद सरस्वती सरीखे लोग वेदोंको अतिरिक्त महत्ता देते हैं. जो अर्थ मूल में नहीं है, उसे मानते है. वेदों को केवल ऐतिहासिक ग्रंथ के रूप में ही देखिये, तो सरलहृदयी भोलेभाले प्राचीन लोगों के बालों जैसे विचार भी स्तुत्य लगेंगे, परंतु उनमें बाष्पयंत्र, विद्युत्‌शक्ति, नीति या दर्शनशास्त्रका तत्त्वज्ञान को ढूंढा जाये, तो फिर उनकी वास्तविक महत्ता नष्ट ही होगी.''

१० ईसाई धर्म प्रसार के लिये वेदोंका भाषांतर

ई. बी. पूसी द्वारा मैक्समूलर को पत्र -

''आपका यह कार्य धर्मपरिवर्तन में नवयुग का निर्माण करेगा. आपको यह कार्य सौंपने के लिए ऑक्सफर्ड विश्वविद्यालय बधाई को पात्र हैं. आप के इस चिरंतन तथा मूलभूत कार्य से ही भारत ईसाई बनेगा. झूठे बासी वैदिक धर्म की तुलना, परिपूर्ण तथा ईश्वरीय ईसाईयत से होगी, और परिणामतः ईसाई लोगों को भी अपने धर्म की श्रेष्ठता का पुनःप्रत्यय होगा. इसी में आपके कार्य की सफलता है.''

११. वेदमहर्षि सायणाचार्य जी पर दोषारोपण

ग्रिफिथकृत ऋग्वेद के अंग्रेजी अनुवाद की प्रस्तावना में मैक्समूलर ने लिखा है कि,

''ब्राह्मण-ग्रंथों के लेखक कल्पनाजन्य धार्मिक मतों से अंधे हो गये थे. निरुक्तकारों ने तों धातुवाद के झूठे आडंबर से सामान्य जनता को धोखा ही दिया. ब्राह्मण तथा निरुक्त के लेखकों ने अपनी विद्वत्ता के

बलपर सायण सरीखे प्रज्ञावान् भाष्यकार को भी मूर्ख बनाया.''

इस प्रकार, मैक्समूलर ने वैदिक ग्रंथकारों पर भी धोखाधडी का आरोप किया है. सूक्ष्म विचार करने पर, मैक्समूलर की निन्दागर्भ व्याजस्तुति की शैली सचमुच दाद देनेयोग्य हैं. इन पत्रों से, वेदों के और हिंदुधर्म के विषय में उसकी विषाक्त भावना की प्रतीति, स्पष्ट रूप से प्रकट होता है, उसे नजर-अंदाज करने से भारत को बहुतही नुकसान पहुंचा है.

१२. ब्रिटिशों की संस्कृत शिक्षाप्रणाली

मैक्समूलर के पश्चात् मैकूडोनल प्रोफेसर बने. उन्होंने ईसाई विचारधारा को वैदिक अध्ययन में कायम का स्थान दिलवाने की दिशा में ग्रंथरचना की. आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में वैदिक वाङ्मय के छात्रों के लिए उन्होंने निम्नलिखित पुस्तकें पाठ्यक्रम में नियुक्त की - १) वेदिक रिडर फॉर स्टूडंट्स २) वेदिक मॅथॉलॉजी ३) वेदिक ग्रामर.

आज भी, भारत में वेद पढने के लिए ये ही पुस्तकें विश्वविद्यालयों में प्रचलित हैं.

'केम्ब्रिज हिस्टरी आफ इण्डिया' में सर्वप्रथम यह विचार प्रतिपादित किया कि, ''आर्य भारत के बाहरी प्रदेश से आक्रमक के रूप में भारत आये. उन्होने द्रविड, कोल, भील, संथाल आदि आदिवासियों को जीत लिया, क्रूरता से उनका संहार किया और उन्हें दास, या दस्यु, या अनार्य नाम देकर गुलाम बनाया और बादमें आर्यसंस्कृति की दीक्षा देकर उन्हें शूद्र श्रेणी में डाला.''

१३. भारतीयों को प्रलोभन

वैदिक अध्ययन करनेवाले छात्रों को इसी विचार का उपदेश दिया जाने लगा. बाद में लाहौर के 'ओरियंटल कालेज' के प्राचार्य के रूप

में. टी. एच्. ग्रिफिथ वैदिक कक्षाओं का अध्यापन करने लगा. पाठ्यक्रम आक्सफर्ड विश्वविद्यालय के अनुसारही था. होनहार छात्रों को छात्रवृत्ति देकर इंग्लैंड भेजा जाने लगा.

तुलनात्मक अध्ययन के नामपर यदि वे सायणाचार्यादि वैदिक भाष्यकारों की कमियों का संशोधन करते, तो उन्हें पीएच. डी. की डिग्री तुरंत प्राप्त होती. फिर ऊँचा वेतनमान, सिविल लाइन में बढिया बंगला तथा प्राचार्य या प्रोफेसर का सन्मान का पद उन्हे दिया जाता. इन प्रलोभनों के मोह में पडकर वे विद्वान् स्वतंत्र रूप से सोचना छोड देते. इस प्रकार, भारतीयों के मस्तिष्क में यही भावना भरी गयी की आर्य एक वंशविशेष है, वह भारत में अत्याचारी आक्रमक रूपमें आया, इत्यादि.

१४. हिंदुत्व का भीषण पराजय

इस प्रकार, आंग्ल शासन की सहायता से ईसाई मिशनरियों ने भारतीय शिक्षापद्धति को आमूल बदल डाला. सैन्यबल से जिते हुए भारत पर उन्होंने विद्या क्षेत्र में भी अतुलनीय विजय पायी. इस प्रकार अंग्रेजों ने योजनापूर्वक भारतीय शिक्षापद्धति को आमूलाग्र बदल डाला।

सैन्यबल से विजित भारत के मानसिकतापर भी उन्होंने अतुलनीय विजय पायी। दुःख की बात यही हैं की शिक्षा के माध्यम से पराजित भारतवर्ष, आज स्वतंत्रता के ५० साल बीत जाने पर भी, बौद्धिक परतंत्रता की शृंखलाओं से मुक्त नहीं हो पाया हैं. टी. बी. मैक्समूलर के शब्द है -

"India has been conquered once,
but
india must be conquered again
and

The second conquest should be
A CONQUEST BY EDUCATION."

(मॅक्समूलर चरित्र और पत्र भाग २. पृ.३७७ ड्यूक ऑफ आर्गाइल को पत्र - १६ डिसेंबर १८६८)

*

अंग्रेजों ने और हम निद्रिस्त हिंदुसमाज ने
मेकॉले और मॅक्समूलर के इस घातक योजना को
भीषण सत्य में बदल डाला ।

आर्योंका गमनागमन

आर्य : ना बाहरसे आये
ना बाहर गये
वे सर्वत्र थे
...

पाश्चात्य एवं भारतीय मतधाराएँ

१. पूर्वपक्ष

पाश्चात्य मतप्रणालियाँ

सर्वप्रथम **मैक्सूलर** ने 'आर्य' शब्द को एक वंश के रूप में माना. इसका कारण -

सन १७७६ में **विलियम जोन्स** ने सर्वप्रथम एक भाषासिद्धांत स्थापित किया कि ''सभी इंडोयूरोपीय भाषाएँ एक समान भाषासे निकली हैं.''

इसपर जर्मन विद्वान् **मैक्समूलर** ने तर्क दिया कि ''समान भाषा बोलनेवाला एक समाज किसी प्रदेश में एकत्रित रहता होगा.

मैक्समूलर के अनुसार वह समाज प्रथम मध्य एशिया याने पामीर के पठार पर था. वहाँ से उसकी शाखाएँ यूरोप, ईरान तथा भारत में फैली.''

सच बात तो यह थी कि आर्यों के ग्रंथों से उनकी विकसित संस्कृति की जानकारी पाकर पाश्चात्य दुनिया बहुतही प्रभावित हुई और

- हर राष्ट्र प्रयास करने लगा कि इस संस्कृति का पितृत्व स्वयं से सिद्ध हो. याने

''तुम्हारे बाप हम ही है''

* **डा. गाइल्स** के अनुसार - आस्ट्रिया, प.जर्मनी आर्यों का मूल स्थान था.
* **नेहरींग** के मत में - दक्षिण रूस आर्यों का मूल स्थान था.
* **ईरानी** लोग कहते हैं कि ईरान ही आर्यों का मूल है.
* **बेंफे** के मत में कास्पियन समुद्र का किनारा आर्यों का मूल निवास था.
* **डॉ. वारेन** ने ''पैराडाइज फाऊंड'' ग्रंथ में प्रतिपादन किया है कि उत्तर ध्रुव-प्रदेश में मानव बसते थे.
* **लोकमान्य तिलकजी** मैक्समूलर का भाषा सिद्धान्त, डा. वारेन का ग्रंथ तथा ऋग्वेदके उत्तरधृवीय संदर्भ; इन सब ग्रंथों का खगोलशास्त्रीय अध्ययन कर के इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि - ''उत्तर ध्रुव प्रदेश से आर्य लोग भारत में आये.''
* कतिपय विद्वानों ने मत प्रदर्शित किया कि ''कश्मीर या उडीसा ही उत्तरी ध्रुव था.''
* **श्री. स. ना. कुलकर्णी** ने कहा कि ''त्रिविष्टप (तिब्बत)

आर्यो का मूल स्थान था, जहाँ से वे हिमालय से नीचे उतरे.''

२. उत्तरपक्ष
देशभक्तों का

इसके विपरीत, **डा. संपूर्णानंद, डा. पु. ना ओक, अविनाशचंद्र दास, डॉ. राजबली पाण्डेय, प्रो. के एम. मुन्शी, डा. पुसालकर, श्री. पावगीशास्त्री, दीनानाथशास्त्री चुलट, डा. फतेहसिंग,** [१]आदि विद्वानों ने वैदिक साहित्य में प्रतिपादित गंगा की महत्ता तथा गंगा से सिंधु नदी तक जाने-आने के उल्लेख पर जोर देकर प्रतिपादित किया कि,

''आर्य भारत से बाहर गये और मध्य एशिया तथा यूरोप में अपनी संस्कृति उन्होंने फैलायी.''

३. सिद्धान्तपक्ष
श्रीगुलाबरावमहाराज का

परंतु इन दोनों पक्षों की अपेक्षा, ऐतिहासिक सत्य प्रतिपादन करनेवाला सिद्धान्त है - आर्यो की विश्वव्यापी संस्कृति का !

श्रीगुलाबराव महाराजजी के अनुसार ''आर्यो के गमन या आगमन की ये दोनों धारणाएँ पक्षपात की दोषी हैं. अन्य सभी धर्मों के जन्म के पूर्व, पूरे विश्व में आर्य धर्म ही था यही पुराना सिद्धान्त ऐतिहासिक सत्य की दृष्टि पर टिकता है. ये दोनों उपपत्तियां गलत है, क्योंकि वैदिक तथा संस्कृत साहित्य में स्पष्ट है कि,

''आर्य का अर्थ कोई वंशविशेष नहीं, अपितु सुसंस्कृत मनुष्य के लिए आर्य शब्द प्रयुक्त था.''

ज्यों ज्यों भाषाशास्त्र, मानववंश-शास्त्र का अध्ययन बढता गया, मैक्समूलर के सिद्धान्त की कमियाँ उजागर होती गयीं.

४. भाषाशास्त्र के अनुसार

आइझैक टेलर कहते है कि, 'यह धारणाही गलत है कि आर्यभाषा बोलनेवाले लोग एकही वंश के होंगे.'' (ओरिजिन ऑफ आर्यन्स पृ. १-७)

उन्होनें अनेक उदाहरणों से सिद्ध किया है कि समान वंशीय लोग भिन्न भाषाएँ बोलते हे, तथा भिन्न वंशीय लोग भी एक समान भाषा बोलते है.

पृ. १७९ पर उन्होंने दृढता से लिखा है कि भाषा तथा वंश में, मानव-वंश-शास्त्र की दृष्टि में 'को-एक्झीस्टन्स' कभी नही रहता.''

जैसे उ. जर्मनी और द. जर्मनी, इन दोनोंकी भाषा एक है तों वंश अलग हैं इटली में भाषा दो हैं किंतु वंश एक हैं.

५. कपालशास्त्रके अनुसार

कपालशास्त्र / मानववंश शास्त्र (एंथ्रोपोलॉजी) भी यही सिद्ध करता है. इटली, स्विट्जरलैंड, फ्रान्स, जर्मनी आदि स्थानों में, उत्खनन करते हुए अश्मयुगीन हथियार तथा मानवी कपाल पाये गये. वर्तमान निवासियों के कपाल भी उसी प्राचीन वंश के ही हैं, यह भी स्पष्ट हुआ. मतलब यह, कि अश्मयुगीन मानव-वंश आज भी यूरोप में जैसा था वैसाही विद्यमान है.

टोपीनार्ड ने तो स्पष्ट रीति से कहा हैं,

"It has been proved that the anthropological types of Europe has been continuous."

प्रा. टी. म्यूर ने भी दृढतापूर्वक प्रतिपादित किया है कि

''संस्कृत के प्राचीनतम ग्रंथों में इस बातका जरा भी निर्देश नहीं मिलता कि आर्य किसी बाहरी प्रदेश से भारत आये.''

६. गलतीका स्वीकार - मॅक्समूलर

इस प्रकार, जब **आइझैक टैलर, मूर** इत्यादि यूरोपियनों द्वारा ''एक भाषा-एक वंश'' यह सिद्धान्त खंडित हुआ, तब ''वी यूरोपियंस'' प्रबंध में स्वयं मैक्समूलर ने अपनी गलती मान ली. उन्होंने मान्य किया कि ''आर्य शब्द से मेरा आशय 'केवल आर्य भाषा बोलनेवाले'' इतनाही था. इंडो-युरोपियन वंश के विषय में मेरा ज्ञान अधूरा है. मैं यह भी नही कह सकता कि वे मिश्रवंशीय थे अथवा किसी एकही वंश के!''

''इन्द्रो यो दस्यूनधरानवातिरत्'' (ऋग्वेद, १-१०१-५) पर किये हुए भाष्य में **डॉ. म्यूर** ने कहा है - " They (दस्यु) are described as a degraded race in Rigveda." - अर्थात्, ''दस्यू याने आर्यधर्म से ही पतित हुई एक जाति'' ऐसा वेदों में वर्णन हैं. याने, शूद्र आर्यों से भिन्न नहीं, यही सिद्ध है.

७. डॉ. आंबेडकरजी का सिद्धांत

डॉ. आंबेडकरजी ने ''Who were the Shudras?'' इस ग्रंथ में पाश्चात्यों के अपसिद्धान्तों का समूल खण्डन किया है. सबल प्रमाणों से उन्होंने सिद्ध किया है कि शूद्र वर्ण भिन्न नहीं, अपितु क्षत्रियोंका ही एक भेद है. मैक्समूलर का खण्डन कर उन्होंने प्रमाणित किया हैं कि आर्य का अर्थ है सभ्य व्यक्ति ! वे कहते है -

१ - समान अवयव-विशेष वाले और समान भाषा बोलनेवाले इन दोनों अर्थों में मैक्समूलर ने आर्य वंश का अस्तित्व माना है, परन्तु उनके ये दोनों विचार परस्परविरोधी है. (शूद्र पूर्वी कोण होते? पृ. ६६)

२ - ऋग्वेद में **'आर्य'** तथा **'अर्य'** ये दोनों शब्द पाये जाते है. 'अर्य' शब्द ऋग्वेद में ८८ बार आया है. शत्रु, सभ्य आदमी, स्वामी, वैश्य, निवासी, भारतदेश इ. अर्थों में वह प्रयुक्त हुआ है. ऋग्वेद में 'आर्यज

शब्द ३१ बार आया है, परन्तु कहींभी 'आर्य वंश' के अर्थ में उसका प्रयोग नहीं हुआ. स्पष्ट है, कि,

'वंशविशेष' के लिए 'आर्य' शब्द का उपयोग वेदों में नही है.

३ - दूसरा मुद्दा है - आर्यों नें भारतपर हमला किया, और यहाँ के मूल निवासियों को जीतकर गुलाम बनाया. परंतु ऋग्वेद में इस बात का बिलकुल प्रमाण नहीं मिलता. इस बात की पुष्टि के लिए **डॉ. आंबेडकरजी** ने **डॉ. पी. टी. अयंगार** के लिखे ''लाइफ इन एन्शंट इंडिया इन द एज ऑफ द मंत्राज'' इस पुस्तक को भी आधार माना है, जो अत्यंत महत्वपूर्ण है.

४ - ऋग्वेद में शूद्र, दस्यु अथवा दास के लिए ''दस्यु, अव्रत, अपव्रत, अनग्नित्र, अयज्यु, अयज्वन्, अब्रह्म, अनृच, ब्रह्मद्विष् तथा अनिन्द्र'' आदि अनेक शब्द प्रयुक्त है.

इससे यही प्रमाणित होता है, कि ''आर्यों द्वारा अनार्यों को गुलाम बनाने का सिद्धान्त'' साबित नहीं हो सकता. (पृ. ७४-७५)

५ - ऋग्वेद में कहा है - ''हे वज्रधारी, तेरी शक्ति के द्वारा तूने दासों को आर्य, और दुर्जनों को सु-जन बना डाला.''(ऋ. ६-२२-१०)

६ - उसी प्रकार, इंद्र का कथन, ''मैंने दस्युओं का आर्यत्व नष्ट कर दिया.'' (ऋ. १०-४९-३) यही सिद्ध करता है कि ''आर्य और दासों शारीरिक वा वांशिक भेद नहीं था किंतु गुणवाचक भेद था. तभी तो दस्यु आर्य बन सकते थे.'' (पृ. -७७)

७ - डॉ. आंबेडकरजी का एक महत्वपूर्ण वाक्य है,

''आर्य वंश के संदर्भ में यूरोपियन ग्रंथकारों का सिद्धान्त इतना मूर्खतापूर्ण है कि, उसे बहुत पहलेही नष्ट हो जाना चाहिए था.'' *

''जर्मनी तो मॅक्समूलर को भूल भी गया''

डा. स्कायहॉक हैडलबर्ग विद्यापीठ - हम मॅक्समूलर के आउट ऑफ प्रिंट ''जीवनी और पत्रों की पुस्तकें'' मोल लेना चाहते थे. दिसंबर. १९८५ में लायडन विद्यापीठ में संपन्न भक्तिकॉन्फरन्स के बाद हैडलबर्ग विद्यापीठ में मराठी तथा संस्कृत अध्ययनके कक्ष देखने गये थे. वहांपर **प्रो. डा. स्कायहॉक** को मॅक्समूलर की पूस्तकों के बारे में पूछा, तो उन्होने कहा कि,

''मैक्समूलर के सिद्धान्तों का सभीने खंडन किया है, और उसने भी अपनी गलती स्वीकार की है. उसका संस्कृत तथा वेदों कें अध्ययन का उद्देशही विपरीत था. आज तो जर्मनी में उसके विचारों को कोई भी मानता नही. जर्मनी तों उसे भूल भी गया है और अभी तक तुम हिन्दू लोग उसे कैसे महान स्कॉलर समझते? यह हमारी समझके बाहर हैं. उसकी पुस्तकें यहां मिलना संभव नही.''

इसके विपरीत, उसी समय दिल्ली में, बहुत बडे मैक्समूलर भवन तथा इंस्टीट्यूशन की भारतशासन द्वारा निर्मिति हुई. - डॉ. कृ. मा. घटाटे, जनवरी १९८६.

*

निष्पक्षता से सोचनेवाले ज्ञानपिपासु पाश्चात्य विद्वान भी 'आर्य 'दस्यु' आदि शब्दों को गुणवाचकही मानते हैं, न की वंशवाचक! यह तथ्य महत्त्वपूर्ण तथा महाराजजी के कथन को पुष्टि देनेवाले हैं.

आर्य-अनार्य वाद की विषाक्तता महाराजजी ने बीसवीं शताब्दि के पहलेही दशक में भाँप ली थी. वे स्वयं देहात के मोहोड कुल में जन्मे थे; अतः यदि आर्य/शूद्र विवाद को पुष्टि भी देते तो वह स्वाभाविक बात थी. और उनकी बुद्धि तो इतनी तीव्र थी कि समूचे

ब्राह्मणों की मर्यादा वे धूलि मे ंमिला देते !

फिर भी यह उल्लेखनीय है कि देश में कलह के बीज बोनेवाले इस वाद को उन्होंने तात्त्विक आधार पर विरोध किया. उनकी निश्चल और कपटरहित बुद्धि, शास्त्रनिष्ठा तथा समाजहितपरता इससे स्पष्ट होती है.

८. डॉ. आंबेडकरजी का मंतव्य

'आर्य' तथा 'दस्यु' शब्दों का अर्थ ज्ञात होने पर, और श्रुतिस्मृतिपुराणादि ग्रंथों में उल्लिखित तत्त्वों से यह स्पष्ट होता है कि ''पूरे जगत में पहले वैदिक संस्कृति ही फैली हुई थी. दुनिया के कोने-कोने में किये गये उत्खननों से भी स्पष्ट है कि ''वैदिक संस्कृति के अवशेष सारे विश्व में यहाँ तहाँ पाये गये हैं.''

परंतु अंग्रेजी शासक तथा ईसाई मिशनरियों ने अपनी सुविधानुसार यह धारणा बना ली कि ''आर्य लोक मूलतः भारतीय नहीं, अपि तु आक्रमक के रूप में किसी बाहरी प्रदेश से यहाँ घुस बैठे हैं.'' उन्होंने इसी सिद्धान्त को इतिहास में गूंथ डाला. ब्रिटिश शासन मजबूत करना और हिंदुओं को ईसाई बनाना यही उनका चरम ध्येय था, और इसी दृष्टि से उन्होंने 'डिव्हाइड एंड रूल' की नीति अपनायी. इतिहास को विकृत बनाने के पीछे उनका यही हेतु था. शुद्ध ज्ञानलालसा की अपेक्षा उनका राजकीय तथा धार्मिक स्वार्थ अधिक सबल था, अतः संस्कृत तथा वैदिक वाङ्मय के अन्तसाक्ष्य की ओर से उन्होंने जान-बूझकर दृष्टि फेर ली और बडी दृढता के साथ सफेद झूट को प्रतिपादित किया कि ''आर्य नाम का कोई अभारतीय और आक्रमक वंश था.''

प्रतिक्रियास्वरूप, देशभक्त संशोधक तथा ज्ञानपिपासु पाश्चात्य

विद्वान भी प्रमाणित करने पर तुल गये कि ''आर्यही मूलतः भारतीय थे, वे भारत के बाहर जाकर पूरे जगत में फैले.'' परंतु जब वैदिक संस्कृति की विश्वव्यापिता समझ में आ जाय, तब उक्त दोनों धारणाएँ निरर्थक प्रतीत होंगी.

९. 'गौर वर्ण का अहंकार'

पूजनीय श्रीगुरुजी गोलवलकर 'वुइ' में कठोर सत्य सुस्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि -

''हमें यही नहीं भूलना चाहिए कि उनकी दृष्टि साफ नहीं थी, उन्हें अपनी गोरी चमडी का अभिमान था. जो देश उनके गुलाम था, उसकी श्रेष्ठता उन्हें कैसे मान्य होगी? न उनके पास उतनी उदारता है, न सत्यप्रियता !

अभी कलपरसों तक तो वे पूरे शरीरपर गोदना गुदवाकर, चेहरा पोतकर जंगलों में घूमते थे, सो उनके वास्ते यह दिखाना अनिवार्य था कि दुनिया के अन्य लोग भी उस समय उसी अवस्था में - या उनसे भी निचली अवस्था में रहते थे.

परन्तु जब हिंदु संस्कृति का श्रेष्ठत्व और बौद्धिक तथा आध्यात्मिक श्रेष्ठता को नकारना उनके लिए नितांत असंभव-सा हुआ, तब वे यह प्रमाणित करनेपर तुल गये कि -

''प्राचीन काल में कही एक आर्यवंश था, जो यूरोप, ईरान तथा भारत में फैल गया, परंतु जहाँ यूरोपीय शाखा दिनों दिन प्रगतिशील होती गयी, किन्तु भारतीय शाखा, आदिम और वन्य समाज के सम्पर्क में आकर संकर होने के कारण उसकी शुद्धता नष्ट हो गयी.''

''पाश्चात्य पण्डितो के मास्तिष्क में यह कल्पना आयी की कास्पियन सागर, आर्क्टिक प्रदेश या अन्य किसी स्थान से आर्य

भारत की ओर आये. लुटेरे बनकर उन्होंने इस देशपर आक्रमण किया, फिर वे पंजाब में बसे, और शनैः शनैः गंगा के तीर से पूरब की ओर बसते चले.''

''हमारे देश के अधिकांश विश्वविद्यालयों में, पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से ऐसे मूर्खताभरे विचार, किशोरवयीन अपरिपक्व विद्यार्थी बालकों के मस्तिष्क में घुसेडे जाने लगे.''

''हमारे इतिहास का सम्यक् अध्ययन करके, शीघ्र से शीघ्र हमें अपना इतिहास लिखना होगा, और जानबूझकर, या अनजाने में फैलाये गये इस भ्रमजाल को पूरी तरहसे हटाना होगा. हमारी प्राचीन वैदिक घोषणा है,

''पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराट्'' (आम्ही कोण? पृष्ठ ७-८)

१०. यवनों तथा म्लेच्छों की भी आर्यमूलता

यह तो पहलेही प्रतिपादित हो चुका है कि ब्राह्मण-क्षत्रियादि चारों वर्ण आर्यों के ही भेद-प्रभेद है. अन्य सभी धर्मों की उत्पत्ति के पूर्व आर्य धर्म परिपूर्ण अवस्था में, पूरे जगत् मे फैला था. परंतु कालप्रवाह के साथ सत्प्रवृत्ति का मान घटता गया और विकारों का प्रभाव बढता गया. अतः वैदिक धर्म धीरे धीरे लुप्त होता चला और अन्ततोगत्वा मूल धर्म सर्वथा विस्मृतप्राय हो गया. धर्माचरण के अभाव में मानवसमाज म्लेंच्छत्व पा गया. (महाभारत शांतिपर्व अ. १८८ मोक्षधर्म अ. १५)

महाभारत -

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत् ।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मभि वर्णतांगतम् ।।१०।।

काम-भोग-प्रियाग्तीक्ष्णाः क्रोधनाः प्रियसाहसाः।
त्यक्त-स्वधर्माः रक्तांगाः ते द्विजाः क्षत्रतां गताः ॥११॥
गोभ्यो वृत्तिं समास्थाय पीताः कृष्युपजीविनः। स्वधर्मान्नानुतिष्टन्ति ते द्विजा वैश्यतां गताः ॥१२॥
हिंसा-अनृत-प्रियाः लुब्धाः सर्व-कर्मोपजीविनः।
कृष्णाः शौच-परिभ्रष्टाः ते द्विजाः शूद्रतां गताः ॥१३॥
मनुस्मृति -
शनकैस्तु क्रियालोपात् इमा क्षत्रियजातयः।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मण-अदर्शनेन च ॥४३॥
पौण्ड्रकाष्-चौण्ड–द्रविडाः कांबोजाः यवनाः शकाः।
पारदाः पल्लवाश्-चीनाः किराताः दरदाः खशाः॥४४॥
मुखबाहुरुपज्जानां या लोके जातयो बहिः।
म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृतः॥४५॥अ.१०

ऐसा मनुस्मृति में स्पष्टरूपसे कहा है. कि, धर्माचरण तथा संस्कारों के लोप के कारण पौण्ड्रक, यवन, शक, चीनी, खश आदि समाज मूलतया आर्य के क्षत्रिय वर्ण होते हुए भी म्लेच्छ बन गये. वैदिक संस्कार तथा उचित मार्गदर्शन भी दुष्प्राप्य थे, अतः वे धीरे धीरे आर्य धर्म से वंचित होते चले और वे ही म्लेच्छ कहलाने लगे.

११. 'म्लेच्छ शब्द का अर्थ'

व्याकरण की दृष्टि से 'म्लेच्छ' का अर्थ है,''शुद्ध उच्चारण करने में असमर्थ.'' परन्तु कालौघ में वह जाति का सूचक बन गया.

इससे यह तो स्पष्ट है कि म्लेच्छ-यवनादि जातियाँ मूलतया आर्य ही थी. **''आदौ कृतयुगे सर्वनृणां हंसवर्ण इति स्मृतः''** अर्थात् कृतयुग में सभी का वर्ण एकही था वह **हंसवर्ण.** बाद में संस्कारलोपादि कारणों से

वे लोग अनेक चार वर्णो में और बाद में अनेक जातियों में विभाजित हुए. परंतु उन वर्ण-जातियों की उत्पत्ति के पूर्व एक नीति और सत्वसे संपन्न आर्यधर्म ही समूचे विश्व में विद्यमान था. उसका पालन करनेवाले आर्य कहलाये, और उसके विरोधी आचरण करनेवाले अनार्य / दस्यु!

१२. वैदिक धर्म की प्राचीनता

महाराजजी कहते है, ''हर धर्म कहता है कि हमारे धर्म से ही अन्य सभी धर्म निर्माण हुए. परंतु उनमें वैसा ऐतिहासिक प्रमाण नही मिलता, जैसा कि अपने वैदिकधर्म में मिलता है !'

उल्लेखनीय है कि आर्यधर्म के अतिरिक्त सभी धर्म कहते हैं, कि ३००० वर्षो पूर्व सृष्टि थी ही नही, वह ईश्वर ने बाद में सृजन की.

* **मुस्लिम** धर्मग्रंथो के अनुसार ६००० वर्ष पूर्व, तथा
* **बायबल** के मत में ६००० वर्ष पूर्व सृष्टि का अस्तित्व नहीं था.
* **भूगर्भशास्त्रीय सिद्धांतों** के अनुसार यह कथन असंबद्ध हैं.

आर्य धर्म में ऐसा निर्देश नही मिलता. अपनी कालगणना लाखों वर्षों की - चारचार युगों के मापनसे हैं, और सृष्टि की उत्पत्ति आकाश से मानी गयी है, जो कि आधुनिक विज्ञान को मान्य है.'' (समयोपदेश,भा१,पृ८) श्रीमहाराजजी ने 'साधुबोध' में भी लिखा है,

* ''इतिहास कहता है कि अतीत कालमें केवल आर्यलोगही विकसित थे.
* धार्मिक इतिहास भी बताता है कि विश्व का हरेक धर्म आर्यधर्म से ही उत्पन्न हुआ है.
* **यहूदी** धर्म अग्निपूजा को मान्यता देता है.
* तत्पश्चात् उसीसे **ईसाई** धर्म परिणत हुआ.
* **पारसीक** धर्म पर आक्रमण करके **मुस्लिम** धर्म उत्पन्न हुआ,
* परंतु उसमें भी अतीत काल में अग्निपूजा सर्वदूर थी. 'अरेबियननाइट'

में अग्निपूजा का निर्देश मिलता है. परंतु बाद में मोहंमद पैगंबर ने उसे बंद कर दिया.

* **'मस्नवी-ए-मानवी''** सदृश सूफी ग्रंथों के अनुशीलन से दिखता है कि यहाँ (भारतमें) आने से पूर्व भी मुस्लिमों के मन में हिंदू ग्रंथों के प्रति आदर भावना थी.'' (साधुबोध प्र. ५५६, पृ. २०६)

महाराजजी के सिद्धान्त के अनुसार समूचे विश्व में पहले वैदिक धर्म ही व्याप्त था.

प. पू. गुरुजी गोलवलकर कहते है कि - ''इस सिद्धान्त के पुनर्स्थापन हेतु इतिहासज्ञ विद्वज्जनों के सामूहिक प्रयास की आवश्यकता है. यह विषय इतना व्यापक है, कि एक-एक अंशपर कई प्रबंध लिखे जा सकेंगे.''

प्राचीन आर्य संस्कृति के सिद्धान्तानुसार, सारी सृष्टि ईश्वरनिर्मित है. आकाश-वायु-अग्नि-जल-पृथ्वी इन पंच महाभूतों की निर्मिति के पश्चात् मानव की उत्पत्ति हुई. ईश्वर ने मानव को वेदज्ञान दिया. प्रथम सर्ग में सभी मानवजाति शमदादिगुणसंपन्न ब्राह्मण ही थी, परंतु बाद में विकारों के प्राबल्य और सदाचार के त्याग के कारण, उनमें चार वर्ण और बादमें जातिव्यवस्था उत्पन्न हुई.

ऐसा नहीं हो सकता कि भगवान् ने भारत, या चीन या किसी एकही प्रदेश में मानव का सृजन किया हो और वह बादमें सारे विश्व में फैंला. अपितु समूचे जगत् में, एकही समय मानवजाति उद्भूत हुई है. अतः वंश-शास्त्र के अनुसार यद्यपि मानवों में वांशिक भेद विद्यमान है. फिरभी उनकी संस्कृति समानही थी, जो कि वैदिक संस्कृति कहलाती है. क्योंकि परमेश्वर ने ही उन सब को वेदज्ञान दिया था. अर्थात् यह वैदिक संस्कृति विश्वव्यापिनी थी.

यह वैदिक संस्कृति केवल भारत में नही अपितु पूरे जगत् में व्याप्त थी. जैसे -

* **कास्पियन सागर** के पास कश्यप ऋषि का आश्रम,
* **मिस्त्र** से भारत तक बलि (बेल Boal) राजा का अधिराज्य,
* **जर्मनी** में मनुवंशीय मेनस् की बस्ती,
* **नार्वे-स्वीडन** में स्कंदनाभि (स्कैंडिनेवियन) क्षत्रिय वंश,
* **लंका** में पुलस्त्यवंशीय क्षत्रिय,
* **अमेरीका** में मयासुर की माया संस्कृति,
* **द. अमेरीका** में सीतामहोत्सव करनेवाली इंका संस्कृति,
* **आफ्रिका** में सूर्यरथ की पूजा.
* **लंडन और पॅरीसके** ८-९सौ साल पुराने चर्चों में येशू ख्रिस्त को हात जोडकर नमस्कार करते हुए शिल्पचित्र.
* **चीन** की प्रसिद्ध विशाल दीवार के उत्तरी दरवाजे पर आज भी संस्कृत भाषामें ''यक्षों के द्वारा परमेश्वर हमारी रक्षा करें.'' यह वाक्य विद्यमान है. दिल्ली के **डॉ. लोकेशचंद्र** ने इसका फोटों पुस्तकमें प्रकाशित किया है.

इसप्रकार सारे विश्व में देशकाल वायुमंडल के अनुसार वैदिक संस्कृति ही विविध रूपों में विद्यमान थी. और तदनुसार ज्ञान-विज्ञान और धर्माचरण से लोग सत्वसंपन्न तथा चरम उत्कर्ष पर थे.

विश्व में हर स्थान में वैदिक तथा स्थानिक देवताओं की ईश्वर बुद्धि से उपासना होती थी. वेद/वेदांगों का अध्ययन/अध्यापन होता था. अस्त्रविद्या, विमानविद्या आदि के रूप में भौ. विज्ञान भी विकसित था.

परंतु काल की विध्वंसक शक्ति से तथा मानव के पतन के कारण यह सारा कुछ विस्मृति के गर्त में डूब गया. आज जब उत्खननों में उन उज्वल अवशेषों के दर्शन होते है, तब मन विस्मित हो उठता हैं.

कालचक्र की महिमा है कि भारत की संस्कृत विद्या, पुस्तक-रूप में जर्मनी चली गयी. वहाँ तथा रूस, इंग्लैंड, फ्रान्स, अमरीका आदि स्थानों में संस्कृत की विज्ञान शाखाओं का उत्साह से अध्ययन होता है, और वे राष्ट्र अधिकाधिक प्रगति की ओर बढ रहे हैं, जबकि हम भारतीय कोलाहल मचा रहे हैं कि संस्कृत हटाई जाये!

विदेशी आर्कियालाजिस्ट भी भारत में आकर बताते है कि प्राचीन अवशेषों का ज्ञान पाने में संस्कृत भाषा एवं आर्य संस्कृति का अध्ययनही उन्हें सहायता देती है. इससे यही सिद्ध होता है कि प्राचीन-अतिप्राचीन काल में पूरे विश्व में हमारी सनातन वैदिक संस्कृति का ही विस्तार था.

वैदिक ऋषियों ने यथार्थ उद्घोष किया है, **‘‘कृण्वन्तो विश्वमार्यम्’’** यह यथार्थ होने के कारण पूरी दुनिया में वैदिक ऋषियों के आश्रमों के और संस्कृति के पदचिन्ह दिखाई देते है. दुर्भाग्य की बात है कि काल के प्रवाह में वैदिक संस्कृति की परंपरा आज केवल भारत में सीमित हो गयी हैं.

पाश्चात्य अन्वेषकोंने अथक प्रयासों के साथ विश्व के प्राचीन इतिहास का ज्ञान पाया तों उन्हें आर्य संस्कृति के चिन्ह सभी स्थानोंपर दिखाई दिये. इस पर से उन्होने निष्कर्ष निकाला, कि विश्व में फैली हुई गत कालकी संस्कृति आज केवल भारत में बची हैं, अर्थात् भारतही में उसके बीज होंगे और भारत से ही दुनियाभर में

फैली होगी. डार्विन के उत्क्रांतिवाद तथा अनुमान की दृष्टि से यह कथन गलत नही कहा जा सकता, परंतु तथ्य वैसा नहीं है.

आजका **अरबस्तान** उस समय केकय प्रदेश कहलाता था. वहाँ की राजकुमारी कैकेयी प्रभु रामचंद्र की एक माता थी.

गांधार प्रदेश याने **अफगाणिस्तान!** धृतराष्ट्र की पत्नी गांधारी वहीं की राजकन्या थी.- स्पष्ट है, कि अरबस्थान हो या अफगानिस्तान, उस समय सभी स्थानोंपर वैदिक संस्कृति ही विद्यमान थी, तभी तो रोटी-बेटी व्यवहार संभव था.

‘‘सत्ताविस्तार के उद्देश्य से न भारतीय बाहर गये थे, न बाहर से भारत आये थे.’’

२००० साल बाद ...यदि ...?

आज हि का उदाहरण लीजिये. -

* व्याकरणकार पाणिनिजी की जन्मभूमि पाकिस्तान कहलाती है. और * चैतन्यमहाप्रभु की जन्मभूमि बांगला देश. (ये दोनों प्रदेश आज निर्हिन्दू हैं यानें पूर्ण रूप से मुसलमान हैं, अनार्य हैं.)

यदि दो हजार साल बाद कोई अन्वेषक कहेगा कि आर्य लोग भारत में आक्रमण करते समय पेशावर-सिंध-बंबई इस मार्गसे नागपूर आये, या बांगला देश सें भारत आए, तो क्या यह कथन गलत न होगा? - जब नागपुर में, मद्रास में हिन्दू लोग बसते थे, उसी समय कश्मीर-सिंध-पंजाब- बांगला देश आदि सभी स्थानोंपर हिन्दू धर्म ही विद्यमान था. वह न कश्मीरियों ने विदर्भ में फैलाया, न मद्रासियों ने उत्तर में.

उसी प्रकार, आर्य न कहींसे कंहीं गये / न आये! अपितु आर्यधर्म पहलेसे ही सारे विश्व में फैला हुआ था. प्राचीन काल का

गमनागमन यात्रा के निमित्त और विद्याध्ययन के लिए होता था, न कि पाशविक धर्मान्तरण या संस्कृतिप्रसार के लिए ! आज भी भारत के भिन्न भिन्न प्रदेश के, भिन्न भिन्न वंशीय लोग चारों धाम यात्रा करते है. यही बात तब भी थी.

जापान में बुद्ध धर्म पहुँचने के पूर्व, यही धर्म था, तभी तो वहाँ गणेश, यमराज, श्रीकृष्ण आदि देवताओं की मूर्तियाँ पायी जाती है. परन्तु कालप्रवाह में वैदिक धर्म लुप्तप्राय हो गया.

प्राचीन मानवों की एकमात्र संस्कृति का, (सनातन / वैदिक / आर्य) यह सशक्त, व्यापक सिद्धान्त प्रतिपादित किया गुलाबराव महाराज ने !

चर्मचक्षुविहीन इस प्रज्ञाचक्षु महात्मा का यह दृष्टिकोण बहुतही महत्वपूर्ण है. पाश्चात्य इतिहासकारों ने हिन्दूसंस्कृति के प्रसार के जो प्रमाण प्रस्तुत किये हैं, उनका विचार इस दृष्टि से करना अधिक श्रेयस्कर होगा.

संस्कृति के प्रसारहेतु भारत के लोग बाहर निकले, ऐसा न मानकर यह समझना ठीक होगा कि दुनिया में सर्वत्र यही एक संस्कृति थी, और देश विदेशों में परस्पर सांस्कृतिक तथा व्यापार का संपर्क था.

एक बार हम इस विश्वव्यापिनी संस्कृति के सिद्धान्त को समझ लें, फिर विदेशियों द्वारा भारत पर किये गये आक्रमण या आदान प्रदान की संगति लगाना कठिन न रहेगा.

अतीत काल में सारे पृथ्वी पर क्षत्रिय राजा ही थे -

''चीन बर्बर-खशादयः सर्वे क्षत्रियजातयः''

परंतु बाद में संस्कारों का लोप होने के कारण वे म्लेच्छत्व

को प्राप्त हुए. यह भी एक धार्मिक परंपरा थी कि विजयादशमी पर्व पर राजा एक-दूसरे पर आक्रमण कर दुसरे राजाओं को मांडलिक बनाएं.

शक-हूणादि क्षत्रियोंने इसी के अनुसार खैबर घाटी से भारत में प्रवेश किया. वे विजयी बने. परंतु यहाँ के भारतीय समाज में वे शीघ्रही मिलजुल गये, क्योंकि उनका धर्म तथा संस्कृति एकही थी. दोनों की पूजाविधि, यज्ञविधि, शिव- विष्णुउपासना आदि और धार्मिक संस्कारादि भी समान ही थे. इसीलिये उन्हे पराये समझकर उनका तिरस्कार नही किया गया.

जैसे सिंदिया (शिंदे) और होलकर महाराष्ट्र के, परंतु उन्होंने ग्वालियर (म.प्र.) तथा वडौद्रा (गुजरात) में राज्य प्रस्थापित किये. परंतु उन्हें न हम आक्रमक मानते हैं न परकीय ! पराजित समाज में विजयी लोग एकरूप हो गए.

उसी प्रकार सिकंदर के पूर्व जो युद्ध हुए, वे परकीय आक्रमण नहीं थे, अपितु विजयादशमी पर्व पर विशाल भारत के हिंदु राजाओं द्वारा अपना-अपना राज्य बढाने हेतु लढें गये युद्ध थे. इसलिए, इस बात में कोई तथ्य नहीं कि प्राचीन काल में अवैदिक परकीयों ने भारत पर आक्रमण किये. परंतु अलेक्झांडर के पश्चात् स्थिति बदली.

मुसलमानों ने आक्रमण किये तो मंदिरों का नाश किया, उपासना की मूर्तियां फोडीं, ग्रंथालयो को जलाया, स्त्रियों का अपहरण किया, इज़्ज़त लूटी, संहार किया, तीर्थ-स्थानों को तोडफोड किया, बलपूर्वक हिंदुओं को धर्मभ्रष्ट किया और उनका धर्मान्तरण किया.

ईसाई पोर्तुगीज तथा अंग्रेजों ने भी वही बर्बर परंपरा चलायी. गोवा में निष्ठुर अत्याचार बहुत किये, लोगों को जिंदा जलाया और धर्मपरिवर्तन को बाध्य किया.

इन क्रूर आक्रमकों को हिंदुओंने अपना नही माना. वैसेही न वे आक्रमक भी मानने को तैयार हुए कि वे स्वयं भी आर्य-संस्कृति के ही उपासक है.

सही आक्रमक शक-हूणादि नहीं, अपि तु मुसलमान / ईसाई हैं.

परंतु उनमें भी जो जो थोडे सत्यान्वेषी और विचार करनेवाले थे, वे आर्य संस्कृति की महत्ता गाने में नहीं चूके. उन्होंने ऐतिहासिक प्रमाणों के आधारपर सिद्ध किया कि यही संस्कृति विश्वव्यापिनी है. हम भी उन प्रमाणों का अवलोकन करेंगे, जिससे अपने तेजस्वी और सत्वसंपन्न पूर्वजों की ओर हम अधिक स्वच्छ दृष्टि से देख पायेंगे.

....

परमगुरु श्री गुलाबराव महाराजजी के इतिहास लिखने के भारतीय दंडकों के अनुसार पाश्चात्य विद्वानों के स्तावक उद्गार और विश्वभर में मिले हुए आये संस्कृति के प्राचीन अवशेषों के संदर्भ इस छोटीसी पुस्तिका में संग्रहित करने का मैंने प्रयास किया है.

।। यह पुस्तिका श्रीमत्सद्गुरु बाबाजीमहाराज के चरणों पर समर्पित ।।

कृष्ण माधव घटाटे

- - - -

४
आर्यसंस्कृति का जागतिक अस्तित्व
वैश्विक संदर्भ

१ - इस्लाम पूर्व इतिहास

मक्का = मखेश्वर

महंमद पैगंबर के पूर्व 'मक्का' हरि-हर के तीर्थक्षेत्र के रूप में विख्यात था. **हरिहरेश्वर-माहात्म्य**, अध्याय ७ में उल्लेख है कि विष्णु का एक पद गया में, दूसरा मक्का में, तथा तीसरा हरिहर-क्षेत्र के समीप शुक्लतीर्थ के पास स्थापित है. इनके दर्शनों से पितृगण मुक्ति पाते है.

एकं पदं गयायां तु मकायां तु द्वितीयकम् ।
तृतीयं स्थापितं दिव्यं मुक्त्यै शुक्लस्य संनिधौ ।।६।।

२ - पाँच प्रस्थ

शक्तिसंगम तंत्र (३, ७, ४-५६) के अनुसार, प्राचीन इतिहास में पाँच प्रस्थ विख्यात थे, **इन्द्रप्रस्थ, यमप्रस्थ, वरूणप्रस्थ, कूर्मप्रस्थ तथा देवप्रस्थ.** इन पाँच प्रस्थों में ५६ देश समाविष्ट थे.

इनमें से **वरुणप्रस्थ** पूर्व की ओर राजावर्त (राजस्थान), उत्तर की ओर हिंगुला नदी तथा पश्चिम की ओर मखेश्वर / मक्का तक विस्तार का निर्देश है.

इस प्रकार, **मक्का से लंकातक 'सैंधव'** नामक सागरतटवर्ती प्रदेश तथा बंगाल की खाडी से ब्रह्मपुत्रा के उगमस्थान तक आर्यावर्त फैला था, जिसमें बंगाल, भूटान, कश्मीर, कामरूप, खुरासन,

केरल, कोंकण, कर्नाटक, सिंहलद्वीप ये सारे प्रदेश अंतर्भूत थे.

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान के निदेशक **डॉ. फतेहसिंग** ने अपने शोधपूर्ण प्रबंध **''सिंधू घाटी में उपनिषदों के प्रतीक''** में उपर्युक्त बात सप्रमाण दर्शायी है.

३ - महादेव की स्तुति

महंमद पैगंबर के चाचा **उमर-बिन-हशम** फारशी भाषा के ख्यातिप्राप्त कवि थे. उनके **''ए-असल-ओकुल''** इस काव्य ग्रंथ में, पृ. २३५ पर हिंद तथा महादेव की स्तुति की है. इस कविता से ही स्पष्ट है कि वे शिवभक्त थे.

४ - लबी-बिन-अख्तब-बिन-तुरफा

पैगंबर पूर्व २३०० वर्ष में, लबी-बिन-अख्तब-बिन-तुरफा ने भी हिंद की गरिमा गायी है. उन्होने यह भी लिखा है कि, ''चारों वेद ईश्वरप्रणीत हैं, तथा वैदिक आज्ञाओं का पालन करना गौरवास्पद है. उपर्युक्त दोनों रचनाएँ काबास्थित शिवमंदिर में सुवर्णाक्षरों से अंकित थीं. इस प्रकार, ऐतिहासिक साक्ष्य के आधारपर महाराजजी का सिद्धान्त ''महमदीय धर्म के पूर्व, अरबस्थान में वैदिक धर्म प्रचलित था.'' यह सप्रमाण सिद्ध होता है.

५ - इस्लामपूर्व अरबस्थान :

अरेबिक लिपी में भागवत

१९९५ में हॉलंड के लायडन नगर में भक्ति के विषयमें आंतर राष्ट्रीय कॉन्फरन्स थी. उसके बाद समीपही एक संस्कृत प्रोफेसर के शताब्दी के अवसरपर उनका ग्रंथालय में रात्रिभोज था. वहांपर अरेबिक पांडुलिपी में लिखित एक बडे ग्रंथ का पन्ना भित्तीचित्र के रूप में प्रदर्शित था. यह पोथी अरबस्थानमें महंमद

पैगंबर के पूर्व कालकी थी. उस भित्तिचित्र में ऊपर रंगीन कृष्णकथाएं चित्ररूप में थी और नीचे अरेबिक लिपी में भागवत था. याने १३०० साल पूर्व मध्यएशिया में संस्कृत भाषा तथा भागवत का अध्ययन प्रचलित था, यही सिद्ध होता हैं.

- डॉ. कृ. मा. घटाटे

आर्यों के यूरोपीय संदर्भ

६ - ईसा-पूर्व युरोप तथा 'येशू का हिंदुत्व'

रशियन संशोधक **डॉ. बुचानिन** द्वारा लिखित **''अननोन लाइफ ऑफ ख्रिस्त''** तथा ईशान पंथ के ईसाईयों द्वारा रचित **''बाय ॲन आय विट्नेस''** तथा **श्री. बाबाराव सावरकर** लिखित **''ख्रिस्ताचे हिंदुत्व''** ये तीनों ग्रंथ इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि २००० वर्षपूर्व, पैलेस्टाइन में आर्यधर्म गलितगात्र अवस्था में प्रचलित था. ईसामसीह को (येशू ख्राईस्ट को) धर्म तथा योग के अध्ययन हेतु भारत आना पडा. वहां उन्होने नाथसंप्रदायसे उपदेश लिया. उनका नाथसांप्रदायिक नाम ईशनाथ रखा गया.

तत्पश्चात् पॅलेस्टाइन जाकर उन्होंनें अपने देशबंधुओं को उपदेश दिया. अर्थात्, ईसा मसीह ने भारत से प्राप्त **'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'** इस वैदिक धारणा का सुचारू रूप से पालन करने का प्रयास किया.

०००

पोकॉक ने **''इंडिया इन ग्रीस''**इस ग्रंथ में, **मंगोपार्क** ने अपने यात्रावर्णन में, तथा **अल्काट** ने अपने कतिपय ग्रंथों में दिखा दिया है कि ''मिस्त्र तथा इथिओपिया में वैदिक संस्कृति थी.''

एच्. एच्. विल्सन ने भी इस बात की पुष्टि की है. **विलियम**

जोन्स, मैक्समूलर, कर्नल टॉड, हौंग, बरोसोस इत्यादियों के मत में भी, ईसा के पूर्व २२०० से ६००० वर्ष तक ईरान में वैदिक संस्कृति थी.

काउंट जान्स्टर्न ने **''थिआगनी आफ हिंदुज'** इस ग्रंथ में प्रमाणित किया है कि,

''खाल्डियन तथा बैबिलोनियन लोग मूलतया मूर्तिपूजक राजपूत हिंदु थे. सूर्य मंदिर के अवशेषो की सहायता से उन्होने प्रतिपादित किया है कि ईसा के पूर्व ४००० वर्ष वहाँ सूर्य की उपासना चलती थी.

पाश्चात्य इतिहासज्ञों का भी अभिमत है कि रोम, आफ्रिका, मेसापोटेमिया, कास्पियन सागर के निकट का प्रदेश (कश्यपमुनि का आश्रम), स्कैंडिनेविया, ब्रिटैन, चीन तथा अमेरीका के पेरु तथा मैक्सिको प्रदेशों में भी आर्य संस्कृति थी.

गॉडफ्रे डिगिन्स ने अपने ग्रंथ में प्रतिपादित किया है कि, ''ब्रिटैन में कभी प्राचीनकालमें द्रविड (ड्रुइड) हिंदुओ का निवास था.''

वैरन हंबोल्ड ने सिद्ध किया है कि ''उत्तर अमेरिका में गणेश, समुद्र-मंथन तथा रामलीला संबंधित कथाएँ मिली है.''

''एशियाटिक रिसर्चेस'' (भाग १) में **विलियम जोन्स** ने भी प्रदर्शित किया है कि,

''मूल अमेरिकन संस्कृति की जड आर्य संस्कृति में थी.''

उत्तरध्रुवीय प्रदेश के संदर्भ में **लोकमान्य तिलक** जी का अभिमत तो सुविख्यात ही है.

चीन, जापान तथा द. पूर्व एशिया में तों हिंदू संस्कृति के

प्रमाण स्पष्ट रूप से अभी तक मौजूद है.

व्हीलर तथा मार्शल ने जानबूझकर प्रचार किया कि ''मोहेंजोदडो, हडप्पा तथा लोथल में सुमेरियन सभ्यता थी.''

परंतु **डा. फतेहसिंग, डा. एस. आर. राव तथा गोलेगांवकर** प्रभृति विद्वानों ने गहरे अध्ययन उत्खनन तथा शिलालेखों के वाचन के पश्चात् उन विकृत धारणाओं की असत्यता उजागर की है. धीरे धीरे क्यों न हो, भारतीय मेधा अब ईसाई मिशनरियों द्वारा अतिरंजित पूर्वाग्रहों से मुक्त होती जा रही है.

७ - ग्रीस

कई भाषाशास्त्रियों का मत है कि ''ग्रीक भाषा का उद्‌गम संस्कृत से हुआ हैं.'' **कर्नल टॉड तथा कर्नल विलाफोर्ड** ने सर्वप्रथम यह मत प्रदर्शित किया कि ''ग्रीक लोगों का मूलस्थान भारतवर्ष था.''

होमर रचित काव्य में वर्णित समाजव्यवस्था का सूक्ष्म परीक्षण करने के बाद **पोकौक** इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ''यह व्यवस्था एशियाटिक-विशेषकर भारतीय नमूने की है. दोनों देशों की भाषा, दार्शनिक तत्वविचारधारा, राज्यपद्धति, धार्मिक आचार, यहाँतक कि नदी-पर्वतों के नामों में भी विलक्षण समानता है.''

पोकौक उसी पुस्तक में बतलाते है कि ''ग्रीस के प्राचीन लोगों को 'पेलासनिक' कहते थे, जो बिहार के संस्कृत नाम 'पलाश' से साम्य है.''

ईसापूर्व १७ वीं शताब्दी के लगभग ग्रीस में एक लेख में बंदर को ''कपि'' शब्द दिया गया है, जो निर्विवाद रूप से संस्कृत है.

८ - रोम

पोकौक ने प्रतिपादित किया हैं कि,

''प्राचीन रोमन देवता भारतीय वीर पुरुषों का ही दैविक रूप है. 'रोम' शब्द वस्तुतः लैटिन हैही नही. 'राम' शब्द से वह निकला है. संस्कृत 'आ' का परिवर्तन लैटिन में 'ओ' में होता हैं.'(इडिया इन ग्रीस पृ १४२)

९ - इटली

कौंट जार्नस्टजना -

ग्रीसमें जब भारतीय आ बसे उसी कालमें कई भारतीय इटली में भी जा बसे.

यही प्राचीन **इस्ट्रुक्सन** लोग थे. इनके धर्म और धार्मिक विधिअयों में और हिंदूओंके धर्मविधियों में बहुत ही समानता हैं. (भा. श्रे. पृ. १०५)

१० - जर्मनी

श्रीमती मैनिंग -

''जर्मन लोग ट्यूटान वंशीय है. जर्मन पुराण कथाओं के अनुसार इस वंश का मूल पुरुष था Manusã आर्य परंपरा भी 'मनु' को ही आदिपुरुष मानती है. इन शब्दों की समानता लक्षणीय है. 'जर्मन Mensch व संस्कृत शब्द 'मनु' एकही हैं.''

ग्रीक इतिहासज्ञ टैसिटस -

प्राचीन जर्मन लोग सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि की उपासना करते थे. मृत देह का दहन करते थे. स्त्रिया सती होती थी. पुनर्विवाह की प्रथा उनमें नहीं थी.

प्राचीन काल में ब्राह्मणों के नामों के आगे 'शर्मा' लगानेकी प्रथा थी. 'शर्मन' शब्द से भाववाचक संज्ञा बनी शार्मण्य. भाषाशास्त्र के अनुसार 'श-ज-य' इन तीन अक्षरों का उपयोग एकदूसरे के

स्थान पर होता रहा है. इसी प्रकार 'शार्मण्य' शब्द से 'जर्मन' शब्द की उत्पत्ति हुई होगी.

जर्मनी के सैक्सन लोग भी ''शकों'' के वंशज है. ''शकसुनु'' और 'सैक्सन' शब्दों का ध्वनिसाम्य तो सुस्पष्टही हैं. इंग्लैंड के प्राचीन सैक्सन प्रार्थनामंदिरों में स्थित चित्र ''गोपी-कन्हैया'' के चित्रों से बहुत मिलते जुलते है. **कर्नल टॉड** के मत में, सैक्सन लोगों के पूर्वज अवश्य हिन्दु संस्कृति के होंगे.

११ - स्कैंडेनीविया

इस देश के नाम की व्युत्पत्ति है **''स्कन्दनाभि.''** स्कंद क्षत्रियों का दैवत हैं, अतः 'स्कन्दनाभि' किसी क्षत्रिय कुल का नाम होना चाहिए.

स्कैंडेनीवियनों का प्राचीन ग्रंथ एद्द (Edda) कहलाता है, और 'वेद' से उसका ध्वनिसाम्य स्पष्ट ही है.

कर्नल टॉड ने कहा है कि ''स्कैंडेनीवियनों के प्राचीन वीररस-युक्त पुराण तथा काव्यग्रंथ राजस्थानी साहित्य से बहुत कुछ मिलतेजुलते हैं.'' - **काउंट जोर्स्टजर्ना** (राजस्थान का इतिहास, पृ. ६४)

काऊंट जार्नस्टजर्ना, जो स्वयं को स्कैंडेनीवियन कहलाते है, प्रतिपादन करते हैं कि ''सातों वारोंके स्कैंडेनीवियन नाम भारतीय नामों से बहुत मिलते है.'' (थियागनी ऑफ हिंदूज पृ १६९)

१२ - इंग्लैंड

'ड्रुइड' नामक प्राचीन मठवासियों के इतिहास में प्राचीन ब्रिटिशों की जानकारी मिलती है. **पोकौक** आदि अन्वेषक मानते हैं, कि ये ब्रिटिश लोग मूलतया बौद्धधर्मीय ब्राह्मण पूजा करनेवाले थे. कश्मिरादि प्रांत की राजपूत जातियों को साथ लेकर ब्रिटनमें

स्थानान्तरित हुए.

पुनर्जन्म / तीन देवता

वे पुनर्जन्म संकल्पना को मानते थे. विश्व की उत्पति, स्थिति तथा लय करानेवाले भिन्न देवताओं को भी मानते थे. धर्म के ज्ञान, सुरक्षा तथा अध्यापन को वे बहुत महत्त्व देते थे.

शापदान

काऊंट जार्नस्टजर्ना कहते हैं कि, ''द्रुइडों (द्रविडों) द्वारा दिये गये शाप से राजा लोग भी ऐसे नष्ट हो जाते थे, ज्यों हँसिये के वार से घांस! स्पष्ट है कि 'शाप' की संकल्पना भी उन में दृढमूल थी.- ''थियॉगनी ऑफ हिंदूज''(भा. श्रे. १०४)

''हर हर महादेव''

ब्रिटिश लोगों का जयघोष है ''हुर्रा.'' (Hurrah) जो कि स्पष्टतया रजपूतों के ''हर-हर'' युद्धनाद का अपभ्रष्ट रूप है.

बौद्ध अवशेष

ब्रिटन के ''स्टोन हेज'' नामक खंडहर इमारत के अवशेष प्राचीन बौद्धधर्मियों के ही हैं.

चंद्र वंशीय परंपरा

कतिपय विद्वानों का अभिमत है कि,

''द्रुह्युदेशीय'' से द्रुइ-देशीय, बादमें द्रुइ-देश, बादमें 'द्रुइद' = ड्रुइड् शब्द बना होगा. ये द्रुइद लोग मानचिन्ह के रूप में 'चंद्रचिन्ह' का प्रयोग करते थे. अर्थात् वे चंद्रवंशीय आर्य थे.

पोकॉकने (इंडिया इन ग्रीस) में यह भी कहा है कि रोमन लोगोंने ब्रिटन जीत लेने के बाद ये द्रुइडलोग ''आईल ऑफ मॉन'' याने आयर्लंड में जाकर रहे. (आईल ऑफ मॉन का अर्थ है ''द्रुइडों

का मुनिद्वीप.'' इन दो शब्दों का ध्वनिसाम्य भी ध्यान देने योग्य है.

कई पाश्चात्य पंडितों ने केल्टिक तथा संस्कृत भाषा के शब्दों एवं वाक्प्रयोगों की तुलना कर यह स्पष्ट किया है कि इन दोनों भाषाओं के प्रयोक्ताओं का निकट संबंध होना चाहिए.

गॉडफ्रे हिगिन्स कहते हैं कि

''ब्रिटैनवासी हिंदुओं के उपाध्याय स्वयं को **''द्रुइड''** (द्रविड) कहलाते थे.''

१३ - फिलीस्तीन

इजरायली लोगों के पूर्व, फिलीस्तीन में तार्तारों की बस्ती थी. इन तार्तारों की मूर्तिपूजा, गाँवो के नाम, वहाँ के क्षत्रिय और अपने राजपूतों के रीतिरिवाज आदि में अति समानता है. 'इंडिया इन ग्रीस' में **पोकौक** ने कहा है कि,

''पैलेस्टीन के प्राचीन लोग भारत से तार्तार, और तार्तार देश से वहाँ बसने गए होंगे.'' (पृ २२९)

१४ - एशिया मायनर

काऊंट जार्नस्टनर्ना ने Theogony of Hindus में प्रतिपादित किया है कि,एशिया मायनर प्रदेश के खाल्डियन लोग मूलतया भारतीय आर्य थे. ''कुलदेव'' ब्राह्मणों की बस्तीवाला यह प्रदेश का नाम अपभ्रष्ट होते होते ''खाल्डिया'' कहलाने लगा. प्राचीन खाल्डियन तथा बैबिलोनियन सभ्यता भारतसेही आई थी. (पृ.१६८)

विख्यात ''ट्रोजन वार'' में जिस Abanti जमात के योद्धाओं का समावेश था, वह जमात मालवा की 'अवंति' नगरी के ही वंशज थे, ऐसा भी मत **श्री. पोकॉक** ने प्रदर्शित किया हैं. (भा. श्रे. ३३)

१५ - राजा बलि = बोल = बेल

असीरियनों के एक प्राचीन राजा का नाम था बेल या बोल (boal) कई पाश्चात्य विद्वानों को कहना है कि कम्बोदिया से ग्रीसतक फैले साम्राज्य का यह शासक पुराण निर्दिष्ट 'बली राजा' ही था.

१६ - ईरान / पर्शिया

पोकौकने "India in Greece" के पृष्ठ ४५ पर लिखा है -''परशुराम के अनुयायी परसु कहलाते थे. इनका प्रमुख शस्त्र था परशु ! भरतखण्ड से आकर उन्होंने पर्शिया में निवास किया, और उस प्रदेश को 'पर्शिया' नाम दिया. वहाँ की प्रमुख नदी **''यूफ्रातिस''** का नाम ''यु-भारत-ईश'' का ही अपभ्रंश है.''

मैक्समूलर ने भी प्रतिपादित किया है,

''भारत के वायव्य भाग से जो लोग ईरान में आ बसे, उन्होंने झोरास्ट्रियन धर्म में न केवल 'आर्य' शब्द, अपि तु धर्म संस्कार भी शुद्ध स्वरूप में रक्षित किये.'' (Science of Language पृ. २४३ से २५३)

मनुस्मृति में भी लिखा है कि ईरानी या पहलवी लोग मूलतः क्षत्रिय थे, फिर कर्मलोप के फलस्वरूप वृषल बने. (अ१०-४३ से ४५)

संस्कृत तथा झेंद भाषाओं में आश्चर्यजनक समानता हैं. झेंद शब्दकोश के १० शब्दों में ६-७ शब्द शुद्ध संस्कृत रहते है. **सर विलयम जोन्स** भी इसे देखकर आश्चर्यचकित हो गये थे.

१७ - ऐल-ऐर-ऐला (रा) न = ईरान

चंद्रवंशीय बुध का पुत्र पुरुरस्. उसकी माता 'इला' के नामपर से उसे 'ऐल या एरा' कहा जाता था. उसके वंशजो ने जिस भूप्रदेश पर बस्ती की, उसे ऐला (एरा) ण या ईरान नाम

दिया.

इरान और तुरान में बडा युद्ध हुआ. बादमें प्राचीन ईरानी लोगोंनें ईरानमें बस्ती की, ऐसा ईरानके पुराने इतिहासकारोंने लिखा है. (भाश्रे१०२)

प्रो. हौग ने दोनों संस्कृतियों की तुलना कर के, उनकी देवदेवियाँ यज्ञविधी गृह्यसंस्कार आदि का अध्ययन से निष्कर्ष निकाला है कि

''प्राचीन काल में तैग्रिस नदी के किनारे कौसी (cossoei) जमात रहती थी. कइयों के मत से उनका मूल काशी में था. ब्राह्मणधर्मसंबंधी कुछ बातों पर उनका आपसमें विवाद हुआ, उसने उग्र रूप लिया, और अंततः वे लोग ईरान में जा बसे.''(Essays of the Parsees, पृ. २८७-८८)

१८ - तुर्कस्तान

मैक्समूलर के मतानुसार, ''तुर्की लोग शापग्रस्त राजा तुर्वसु (ययातिपुत्र) के वंशज हैं.'' (सायंस ऑफ लैंग्वेजेस पृ २४२)

कई अन्य विद्वानों के मत में व राजा 'तुरुषक' के वंशज हैं.

खोरासान- चंद्रवंशीय यादव तथा बाल्हिक वंशीयोंनें खोरासान में राज्योंकी स्थापना की. ऐसा जैसलमेर के राजपूतों के इतिहास में हैं. (भा. श्रे.१०५)

१९ - मिस्त्र / इजिप्त / इथिओपिया

सिंधु वंशीय औरप्राचीन इजिप्शीयन

कर्नल अल्काट (थियॉसॉफिस्ट जर्नल मार्च १८८१)

पोकॉक (इंडिया इन ग्रीस पृ. ४२)

''हम पंत देशसे आए, ऐसा प्राचीन इजिप्शीयनों का कहना

हैं उनके मूल देशभूमि का वर्णन **'वर-एल-बाबरी'** इसमें **'हासली टोप'** रानीके मंदिर में भित्तीओंपर चित्रलिपी में लिखा हुआ हैं. वहां के पशु और वनस्पतियों का, विशेषतः मूल्यवान लकडियों का जो वर्णन हैं वह सारे पशु और वनस्पतियाँ हिंदूस्तानके ही हैं.

इसका मतलब है कि, आज के मिस्त्रवासीय लोगों के पूर्वज हिंदुस्थान से, मुख्यतः सिंधु नदीके पासके सिंध प्रांत से, मिस्त्र में आये ऐसाही दिखता है. यह लोग ८ -१० हजार वर्षो पूर्व सिंध प्रांत से निकले और बलुचिस्तान, ईरान, अरबस्तान आदि देशों के सागरकिनारों से यात्रा करते हुए अरबी उपसागर, रेड सी देखते देखते मिस्त्र के ज्युबिया और इथियोपिया के पूर्व किनारोंपर उतर गए.

फिलास्टेटस् कहते हैं - ''इन लोगों ने हिंदूस्तान के एक राजाका विश्वासघातसे खून किया इसलिए उन्हे भारतसे भगा दिया था. उन्होंनेही **इथियोपिया** में बस्ती की.''

''कालबाग के नजदीक सिंधुनदीके प्रवाह को 'नीलाब' नाम हैं. इन लोगोंने इजिप्त मे आने के बाद वहां की बडी नदीको **नीला/नाइल** नाम दिया.''

मिस्त्र के कई प्रांतों, नदियों के नाम भारतीय मूल के प्रतीत होते हैं. ''रामेसीस'' सदृश राजाओं के नामभी ''रामवंश'' सूचित करते हैं. प्राचीन मिस्त्र शब्दावली संस्कृत के बहुतही निकट है. दोनों देशों के वास्तुशिल्प के स्वरूप और विषय भी समान लगते है'', यह अभिप्राय **पोकॉक** ने India in Greece में दिया है.

२० - नृ-कपालसे वांशिक शोध

प्रो. हिरेन **का अभिप्राय है कि,**''प्रो. ब्लू मेनावास **ने विश्व के अलग अलग वंशोंके नर कपालों का संग्रह किया हैं. उसमें भारतीय**

और इजिप्शीयन मिस्त्रवंशीय कपालोंका आकार और रंग से बहुतही साम्य हैं.''

''प्राचीन इजिप्शीयन लोगोंकी समाजव्यवस्था, धर्मसंकल्पनाएँ, राज्यसंस्थाएँ, तथा सामाजिक / पारिवारिक आचारविचार में भारतीयों से बहुत समानता हैं.'' ऐसाभी इनका कहना हैं. (एशियाटिक नेशन्स- खंड २ पृ. ३७३)

२१ - अफ्रीका

अफ्रीका के माउंट शंभू और माउंट मेरु ये दोनों पर्वतशिखर संस्कृत नाम से अंकित है.

अफ्रीका यात्रा का वर्णन करते हुए **मंगो पार्क** ने वहाँ के संस्कृत या संस्कृतोद्भव नामांकित शहरों की नामावली (Asiatic Journal, Vol. IV के पृष्ठ ३२४) दी है.

१) मध्य अफ्रीका में प्राचीन मंदिर के खंडहर के शिलापर अंकित सूर्य का रथ मिला है. उससें सूर्योपासना का संकेत मिलता हैं.

२) दक्षिण अफ्रिकामें सुवर्ण को **''सुन्न''** शब्द का प्रयोग हैं. इसका मतलब है कि विगत कालमें वहांसे सोना भारत निर्यात होता था, यह स्पष्ट हैं. (डर्बनके विशालहिंदुसंमेलन में पढे गए पेपर्स इ. स. १९९४)

२२ - साइबेरिया

कर्नल टॉड - साइबेरिया में बसी हुई **''सामोयेदीज''** तथा **''जोदीस''** जमातें क्रमशः 'श्याम' तथा ''यादव'' के शब्दोंसे उत्पन्न हैं. उनकी भाषा भी संस्कृत से नजदीक हैं. साइबेरिया में जाते समय वे मध्य एशिया में जहां ठहरे थे उसको 'यदू की डांग' (टेंकडी) नाम हैं.

यादवोंकी कुछ शाखाएँ झाबुलीस्तान और समरकंद के तरफ गयी और वहां गझनी शहर उन्होंने ही बसाया.'' - (राजस्थान

का इतिहास, खंड १ पृ ८५)

डा. लोकेशचन्द्र - ''जिस देश में कृष्ण को गिसनखान कहते हैं'' इस लेख में डा. रघुवीर के पुत्र डा. लोकेशचन्द्र ने साइबेरीया की बोली भाषामें प्रचलित कृष्ण-कथाओं का निर्देश किया हैं. (राष्ट्रधर्म मासिक,दिल्ली,जाने.१९७३)

२३ - यूरोप शब्दका प्राचीन रूप संस्कृत

कर्नल टॉड - **''यूरोप'' इस शब्दका प्राचीन रूप इसप्रकार -**

(सु + रूप = सुरूप / यू + रूप = यूरूप = यूरोप) ऐसा हैं.

संस्कृत में 'सु' और ग्रीक में 'यु' का एकही (सु = यू = सुंदर) **ऐसा अर्थ है. (राजस्थान का इतिहास पृ. ८४)**

२४ - आशिया / यूरप का उत्तरीय प्रदेश

पोकॉक -

एशिया और यूरोप का उत्तरीय भूप्रदेशमें रहनेवाले ''हायपर बोरीयन'' **नामके लोग मूलतः खैबरपुरं से आकर यहां रहने लगे. वैसेही उनकी दूसरी बस्तियाँ** ''थेसली'' **प्रांत में** ''किनिक्स नदी'' **के किनारे बसी थी. लोग आजभी स्वयं को खिफारा / खिफेल कहते हैं.**

हायपर बोरियनों के पास के लोग ''पेशवारून **नाम के हैं. इन में से तोमारस, सुमेरू, और पेशावरून ये सारे पेशावर से वहां आये हैं. ग्रीक भाषामें इन लोगोंका** 'पासारीन' **नाम हो गया हैं. (इंडिया इन ग्रीस पृ. १२७,२८)**

२५ - अमरीका

अतीत काल में अमरीका का उत्तर भाग घने जंगलों से भरा था, परंतु मध्य तथा दक्षिण अमरीका में **बैरन, हंबोल्ट** आदि अन्वेषकों को, दुर्ग, पुलों, तालाबों, नहरों तथा सडकों के इतने अवशेष मिले हैं कि निर्विवाद रूप से उन्हें मानना पडा कि वहाँ विकसित लोगों की बस्ती थी.

२६ - हिंदु संस्कृति के संस्कार

कोलंबस - अमेरिका का शोध लगानेवाला कहता है -

* हिंदू तथा मंगोलियन आकृति के हजारों मूल अमेरिकनों में हिंदूओंकी अनेक रूढियाँ कायम है.
* हिंदू देवताएँ इंद्र-गणेश इनकी पूजा होती है.
* हिंदूपद्धतियों के अनुसार बच्चोंको गुरुगृह में शिक्षार्थ भेजते हैं.
* ब्राह्मण पुरोहित विवाह का संस्कार करते है.
* शव का अग्नि से दहन होता है.
* पत्नी को पति के साथ सती होना मान्य है. भारत के समान वैराग्य और पवित्र आचरण से पत्नी अपना स्वतंत्र परमार्थजीवन यापन कर सकती हैं.

इससें यही स्पष्ट होता है कि हिंदु और मंगोलियन वंश के लोग जलमार्ग या स्थलमार्ग से अमरिका पहुंचे होंगे.'' - **भिख्खू चमनलाल** (हिंदू अमरिका)

२७ - सत्यप्रियता, सदाचार और कठोर शिक्षा

''फ्रेडरिक टॉमसन ने लिखा कि, प्राचीन अमेरिकन बहुत सदाचारी थे. वहां के लोगों की धार्मिक भावना और असत्य की घृणा देखकर स्पेनीश लोगोंको आश्चर्य का बहुत धक्का लगा.

सत्य और सदाचरण के बहुत कठोर नियम थे. तथा नियमभंगकों कों बहुतही कठोर दंड मिलता था. यह देखकर भारत के स्मृतिकालीन

कठोर न्यायालयीन शिक्षाओं की याद आती है.'' - **भिख्खू चमनलाल** (हिंदू अमेरिका)

२८ - माया / इंका / आस्तिक संस्कृतियाँ

भिख्खू चमनलाल -

* मध्य अमरिका की आस्तिक संस्कृति,
* दक्षिण अमरिका की इंका संस्कृति तथा मेक्जीको की माया संस्कृति;

ये तीनों संस्कृतियाँ भारत के ऋषिकुलों की शिक्षण प्रणालियों के अनुसार अध्यापन करती थीं.

* पुरोहित वर्ग विद्यादान करता था.
* बच्चोंको गुरुकुल में भेजा जाता था. वे गुरु की सेवा करते थे और वहां धार्मिक तथा नैतिक शिक्षण पाते थे.
* सामाजिक स्तर या जाति के अनुसार अलग अलग शिक्षा मिलती थी.
* वहां नियमपालन कठोर था - सुबह सुर्योदय के पहले जागना, तुरंत स्नान करना, अघमर्षण, धार्मिक होमहवन, अग्निपूजा करना आदि नित्यक्रम था.
* वहां की युद्धकला की शिक्षा, व्यायामादि प्रकार देखते हुएँ हिंदूस्तान की याद आती हैं.'' - **भिख्खू चमनलाल** *(हिंदु अमरिका)*

२९ - राम की विजययात्रा

कर्नल टॉड - ''यदि गंगानदी से नाईल नदीतक विशाल प्रदेश के इतिहास का आवरण दूर किया जाय तों रामकी विजययात्रा, ऑरगोनॉट्स् के समान, आरंभसे ख्याल में आयेगी.''

''अलेक्झाण्डर यदि खुष्की के जमीनमार्ग से पंजाब तक जा सकता हैं तों कोसल देश के सम्राट तथा सगरवंश के 'समुद्रराज' नामसे प्रसिद्ध ६० हजार सगरपुत्र, जो अच्छे नाविक थे, वे सारे भूतलपर स्थान स्थान पर क्यों नही जा सकते ?''

''भारत के 'समुद्रराज' नामके अयोध्यासम्राटने मिस्त्र याने इजिप्तपर अपना स्वामित्व स्थापित किया और बादमें उसके संस्कृति का प्रभाव अमरिका में भी पहुंचा.''

....

''साम्राज्यविस्तार के कारण सारे विश्व में भारतीय संस्कृति पहुंची; ऐसा मानना ठीक नही. अपितु श्रीगुलाबराव महाराज के अनुसार सारे विश्वमें आर्यों की संस्कृति अनादि कालसे प्रचलित थी, यह प्राग् ऐतिहासिक सिद्धान्त से सारे विश्वमें मिलने वाले आर्य संस्कृति के अवशेषोंकी संगति समझमें आती है.

३० - ऋषियों का विश्वसंचार

प्रो.पोकॉक - मैंने बहुत सावधान रहकर कठोर और सूक्ष्मतासे परीक्षण किए हैं. केवल सिद्धान्तों की दृष्टिसे ही नही तो शब्दों की समानतासे भी, मैं अचरज में पड गया हूं. उन शब्दों की एकरूपता और असंख्यता मैंने देखी उससे ऐसा लगता हैं कि -

प्राचीन अमेरिका का मनोवैज्ञानिक परीक्षण एक ऐसा व्याकरण है कि, जिसके अध्ययनसे हमारे युरोपियनों के विश्वभ्रमणसें भी - भारतके प्राचीन ऋषियों के विश्वभ्रमण की यात्रा हमें 'सत्य इतिहास' के रूपमें स्वीकार करनाही पडता हैं. उसके सारे दस्तावेज (एव्हिडन्सेस) आज भी बडे पैमानेपर मिलते हैं. (उपसंहार)

३१ - पेरू देश : दक्षिण अमेरिका

सूर्यवंशी पेरूवियन

प्रा. जोन्स (विख्यात अमेरिकन इतिहासकार) कहते हैं कि,

''द. अमेरिका के पेरू देश के लोग इंका संस्कृति के हैं. ये पेरूवियन लोग सूर्यवंशी रामको सीतापति और कौसल्यापुत्र मानते हैं और स्वाभिमान से स्वयं को भी सूर्यवंशी समझते हैं.

विजयादशमी के समय वे **रामसीत्वोत्सव** (राम-सीता-उत्सव) और बादमें **रामजन्मोत्सव** भी बडे धूमधाम से मनाते हैं.''

३२ - वेश्या-रहित देश

भिख्खू चमनलाल - 'हिंदू अमेरिका' में लिखते हैं कि, ''मैक्जीको के समान पेरू देशमें भी, ईसाईयोंने किए हुए नृशंस और भयानक संहार के पहले, वहां प्राचीन संस्कृति की अखंड परंपरा नजर आती हैं.

* पेरूवियन लोगोंका पुनर्जन्म पर विश्वास था.
* उनमें वर्ण तथा जतियाँ थी. किंतु उनमें परस्पर द्वेष नहीं था.
* उनमें आश्रमधर्म का पालन होता था.
* पेरू के लोग उद्यमशीलता, सदाचार तथा शिष्टतापूर्ण व्यवहार में विख्यात थे.
* वहां चोरी का नाम नही था.
* उनकी देवता और स्वर्गादि पर पूरी श्रद्धा थी.
* सबसे महत्वपूर्ण बात याने - पेरू वेश्यारहित देश था.

इस प्रकार पेरूदेशका पेरूवियन समाज बहुतही संस्कारसंपन्न था.''

३३ - 'रामसित्वा' : रामसीता विवाहोत्सव

सर विलियम जोन्स - द. अमेरिका में भारतीय कब आकर बसे यह समझनेके बाहर हैं. किंतु रामकालके बादमें कभी आये होंगे. पेरू में मूल निवासियोंका उत्तरभारत जैसा रामलीला समान **'रामसीत्वा'** नामक उत्सव मनाया जाता था.

ये राम सूर्यवंशी हैं. उनकी पत्नी सीता हैं. माता कौसल्या हैं. यही पेरुवासियों की धारणा है. राम, कौसल्या, सीता ये तीनों नाम वहाँ ज्यों के त्यों है. सर विल्यम जोन्स भी इस बात पर बहुत विस्मित थे.

ई. जी. स्कूविएर यह गण्यमान्य अमरीकी विद्वान ने लिखा है,

"A Proper examination of these monuments would disclose the fact, that in their interior as well as exterior form and obvious purposes, these buildings (Temples in Palenque, Mexico) correspond with great exactness to those of Hinduism" - **Scuier**

उनके इस कथन को भिख्खू श्री. चमनलाल द्वारा दर्शाये गये निम्नांकित तथ्यों से पुष्टि मिलती है.

भिख्खू चमनलालजीके अन्वेषण -

१) **ग्वाटेमाला** में स्थित कूर्मावतार विष्णु की प्रतिमा (पृष्ठ १३१)

२) **मध्य तथा द. अमरीका** और विशेषतः बोलिविया तथा पेरू स्थित सूर्य के मंदिर. (पृष्ठ १३१)

३) **पेरू** स्थित मंदिरों में कमल तथा चक्र के शुभ चिन्ह. (पृ. १३१)

४) मेक्सिको में **ब्रह्मा** (Cihuacoatle), **विष्णु** (Tlalok) **शिव** (Huitzirochti) तथा अमरीका की मूर्तियाँ (पृ. १३२)

३४ - मेक्सिको

भिख्खू चमनलाल 'हिंदू अमेरिका' में लिखते हैं कि,

* अमेरिका में जगह जगह कई देवताओं के मंदिर थे.
* मैक्सिको में रोगी बालकों का देवतार्पण करने की परंपरा थी. और वे बालक आमरण देवता और मंदिरकी सेवा करते करते आनंदसे जीवनयापन करते थे.
* कुमारिकाओं को भी कठोर नियम पालन करके पावित्र्यसे रहना आवश्यक था.
* आज भी मेक्सिको में प्राचीन संस्कृति की बच्चियाँ तथा स्त्रियाँ पिता, पति या भाई को साथ लेने बिना शाम को या रात्रि को घर के बाहर

निकलती नही.''

३५ - मेक्सिको में राज्याभिषेक

भिख्खू चमनलाल - वर्णन करते हैं कि,

''मेक्सिको में राजाओं की राज्याभिषेक की प्रथाएँ भारतीयों के समान थी. राजाके गले में **यज्ञोपवीत** याने जनेऊ रहता था. पुरोहित राज्याभिषेक के समय राजाके मस्तकपर राजमुकुट रखता था. राजाके मृत्यू के उपरान्त राजाका पुत्र राज्यके भूमि का भोक्ता याने अधिपति बनता था.''

३६ - मेक्सिको में महाभारत का आगमन

प्रो. ह्यूरेट कहते हैं -

''हिंदूओंने मैक्सिको आते समय पांडवकथा का अठारह पर्व का महाभारत अपने साथ लाया. महाभारत काल की वर्णाश्रम पद्धतियाँ, व्यवसाय के विविध प्रकार और व्यापार की भारतीय धारणाएँ भी अपने साथ लायी.

इन अवशेषों की वास्तु-शिल्प-शैली भारतीय पद्धति से मिलती है. मूल अमेरिकीयों की धार्मिक रूढियाँ तथा धारणाएँ भी भारतीयों के समान हैं जैसे -

१) धरित्री या **पृथ्वी को देवतारूप** में देखना.

२) पत्थर पर तराशे (उत्कीर्ण) **पदचिन्हों की पूजा** करना.

(बौद्ध लोग बुद्ध के चरणों की, हिंदू कृष्ण के तथा मारवाडी अजयपाल के चरणों की पूजा करते हैं, वैसे मेक्सिकन भी करते हैं)

३) **ग्रहण-समय** में चंद्र को राहु तथा सूर्य को केतु ग्रसित करता है यह कल्पना. राहुकेतु को **'माल-ओयो'** संज्ञा हैं.

४) धर्मसंस्थापकों तथा उपाध्यायों के गलों में **सर्पहार** दिखानेवाले चित्र

इनकी 'शिव' या 'काली' से समानता है.

५) गजवदन मूर्ति की पूजा - यह संकेत बहुत ध्यान देने योग्य हैं और यह हिंदु **गणेशपूजा** से आई समानता अचानक या ॲक्सिडेंटसे आई नही, यह बात निश्चित है.

- **बॅरेन और हंबोल्ट**

(It presents some remarkable and apperently not accidental resemblence with Hindu's Ganesh.

- Barren, Humbolt)

६) **जलप्रलय** का इतिहास.

७) **कूर्मपृष्ठ पर पृथ्वी** की धारणा अमेरीकी मानते हैं कि, कूर्म जब समुद्र में डूबेगा, तब प्रलय होगा.

८) **पुनर्जन्म** तथा पूर्वजन्म पर श्रद्धा.

९) **नाग-पूजा** की उपासना. मिस्त्र, सीरिया, ग्रीस, स्कैंडिनीविया तथा चीन में भी नाग-पूजा प्रचलित है.

१०) पुराने मेक्सिकीयों का **वेश** भी भारतीयों के समान था. वे लोग पैरोंमें चप्पल पहनते थे. स्त्रियोंका साडी पहनना तो बिलकुल भारतीय स्त्रियोंके समान हैं.

११) द. अमरीका के पेरू देशमें आज भी **रामलीला** होती है.

३७ - माया संस्कृति हिंदुत्वसे चिन्हित

फान्ज्र ब्लूम तथा **फादर लैडा** -

१) कार्यारंभ में प्रार्थना की अनिवार्यता. (भा. श्रे. पृ. १३६)

२) प्रथम पुरुषोंको परोसकर बादमें स्त्रियोंने भोजन करना.

३) मृत देह का अग्नि से दहन. **फान्ज्र ब्लूम तथा फादर लैडा** ने सप्रमाण बताया है कि,''माया संस्कृति में दहनही होता था, दफन नहीं,

और मृतदेह की 'रक्षा' भी जतन की जाती थी. (भा. श्रे. पृ. १३९)

३८ - आस्ट्रेलिया

आस्ट्रेलिया में भारत से संबद्ध कई अवशेष पाये जाते हैं. वहाँ के लोग 'बूमरैंग' नामक हथियार का प्रयोग करते हैं, जो एक नुकीला शस्त्र है, और शत्रु पर प्रहार करने के पश्चात् वह फिर चक्राकार गति से फेंकनेवाले के पास वापस आता है. यह सुदर्शन चक्र की ही अनुकृति है.

३९ - जावा सुमात्रा

'हिंदूस्तान के इतिहास' (पृ. १६८) में **एल्फिन्स्टन** ने लिखा है, ''जावा-सुमात्रा के लोग मूलतया सूर्यवंशी क्षत्रिय थे. वहाँ के ग्रंथों में तथा देवालय के भित्तिचित्रों में पुराणकथाएँ तथा ऐतिहासिक वीरों की कथाएँ चित्रित है. अभी भी वहाँ पर पुराना शकसंवत्सर चलता है, जिसका प्रारंभ ई. पू. ७५ से है.''

४० - बोर्नियो द्वीप

बोर्नियो द्वीप में तों ऐसे अनेक देवालय हैं, जहाँ दीवारोंपर हिंदु पौराणिक प्रसंग चित्रित है. किनारे से ४०० मील भीतर के देवालय तो अत्यंत श्रेष्ठ वास्तुकला के निदर्शक है.

४१ - बाली द्वीप

यहाँ तों आज भी हिंदुओं के वंशज विद्यमान हैं. रामायण-महाभारत की उनकी भाषा में प्रतियाँ भी उपलब्ध हैं. मंदिर तथा रीति रिवाज सब हिंदू पद्धति के हैं.

४२ - चीन

कर्नल टॉड के मत में, ''चीन तथा तार्तारी वंशावली में मूल पुरुष का नाम ''अवर'' दिया है, जो पुरुरवा का पुत्र था. चीन की संस्कृति आर्योद्भूत है.

'चीन' यह नाम भी संस्कृत है, और बाइबल में उसे 'सिनिम' कहा गया है.' (Royal Asiatic Society Journal, Vol.V)

डॉ. कैलाशचंद्र की पुस्तक में -

चीन के उत्तरीय भित्ति के दरवाजे पर संस्कृत भाषामें ''यक्षोंसे ईश्वर हमारा रक्षण करें'' ऐसा जो तराशा हुआ लिखित उत्कीर्ण हैं उसका फोटो भी प्रकाशित हैं.

४३ - जापान

जापान के गण्यमान्य **शिंटो पण्डित श्री. रिंगतारी नागासावा** का कथन है,

''अतीत काल में जापान ब्राह्मानोकयो / ब्राह्मणत्व ही कहलाता था.'' (INDIA AND JAPAN पृ. ८३, पंक्ति -१६)

श्री. भिख्खू चमनलाल ने निम्नांकित तथ्य प्रदर्शित किये है -

१) समुराई योद्धाओं की 'हाराकिरी' में तथा राजपूतों के 'जोहर' विधि में समान मनोवृत्ति झलकती है.

२) टोकियो में बुद्धपूर्व काल से स्थित मंदिर में **इन्द्र** की मूर्ति पायी जाती है, तथा **मत्स्य** और **वराह** अवतारों की चित्रावलियों से वहाँ की दीवारें सुशोभित है.

३) जपानकी पुरानी राजधानी 'नारा' के प्राचीन बुद्धमंदिरके प्रवेश द्वार पर **वेणु बजानेवाले कन्हैया** की मूर्ति तराई हुई उत्कीर्ण है.

समान प्रथाएँ

१) **श्राद्ध,** (जपानी भाषा में ओबोन) पृ. १०५,

२) पितरों को **भात के पिंड** अर्पण करना (पृष्ठ १०७),

३) **होम-हवन** (जापानी मे गोम) करना.

४) प्रातः काल पूर्वाभिमुख हो **सूर्यवंदना**.

५) मंदिर जाकर **घंटा** तथा नगाडा (जपानी मे ताइको) बजाना.

६) ''नमो अमिदबुत्सु'' इस मंत्र के साथ **१०८ मणिमालासे जप**.

७) **कार्तिक-स्नान** के समान, **'कान' मास** में प्रातःस्नान करना. (जनवरी प्रारंभ से फरवरी प्रारंभ तक)

ooooo